वर्ष 27 अंक 257
पृष्ठ 16+8+8+4=36
नई दिल्ली, रविवार
2 अप्रैल 2017
गाजियाबाद
मूल्य ₹ 5.00

दैनिक जागरण

विश्व का सर्वाधिक पढ़ा जाने

गोमती रिवर फ्रंट प्रोजेक्ट की होगी जांच : योगी 2

सिर्फ कर्ज व निवेश के लिए शाखा आएंगे ग्रा

आज के एकलव्य की गुरुदक्षिणा

हास्य-व्यंग्य

द्रोणाचार्य के रथ मे जुते घोड़ों ने जैसे ही कदम आगे बढ़ाने से इन्कार किया वैसे ही गुरु द्रोण वस्तुस्थिति का जायजा लेने जमीन पर उतरे तो चिंतित हो उठे। वह अपनी जिज्ञासा शांत करने जैसे ही आगे बढ़े तो एक खुले मैदान में लैपटॉप पर अपनी फोटो अपलोड किए किसी को यूट्यूब पर वीडियो के जरिये धनुर्विद्या का अभ्यास करते पाया। इससे पहले कि वह इस शिष्य से कुछ पूछ पाते वह साक्षात गुरु को सम्मुख पाकर नतमस्तक हो गया। गुरु का सीना भी गर्व और अभिमान के मिश्रित भावों के साथ और चौड़ा हो गया। अपने आश्चर्य भाव को और न बढ़ाते हुये एकलव्य बोला-हे महामानव आप ही मेरे गुरु हैं और रणभूमि में धनुर्विद्या (आप चाहे तो धनुर्विद्या को वाकचातुर्य कह सकते हैं) में जो मैंने महारत पाई है वह आप को गुरु मानकर ही हासिल की है। मुझे स्वयं प्रतियोगिता में टिके रहने योग्य बनाने के लिए वर्तमान युग की मुफ्त 4जी सेवा से संचालित यूट्यूब पर उपलब्ध आपके वीडियो का सहारा लेना पड़ा सो जाने-अनजाने आप ही मेरे गुरु हैं। अब गुरुदेव की पेशानी पर बल पड़ने लगे। यूट्यूब वीडियो ही सही उस पर कॉपीराइट तो बनता है। गुरु द्रोण की चिंता किसी के धनुर्धर बन जाने से नहीं जुड़ी थी। असल में गुरुदेव सत्ता और उसके प्रति अपनी निष्ठा से बंधे हुए थे, लिहाजा उनकी चिंता इससे जुड़ी थी कि कहीं भारत में अर्जुन से बड़ा धनुर्धर न हो जाए।

नैतिकता के तकाजे व्यावहारिकता की कसौटी पर आते ही कूटनीतिक तरीके से व्यवहार करने लगते हैं। जीत में इस बात के मायने नहीं रह जाते कि वह छल से मिली है, नैतिक बल से या फिर बाहुबल से। इसे आप बहुमत सिद्ध करने के तौर-तरीकों की उपमा मे बांध कर समझ लीजिए। इससे पहले कि सत्ता द्वारा पोषित शिक्षा व्यवस्था जीत जाती और बाज़ार की कोचिंग में पैसे लुटाकर पढ़ा हुआ छात्र हारता, गुरु द्रोण के मुख से अचानक प्रस्फुटित हुआ-हे शिष्य, गुरु दक्षिणा! आधुनिक एकलव्य अभिभूत हुआ। गुरु की लाइव क्लास न सही वर्चुअल क्लास के बावजूद

मुरली मनोहर श्रीवास्तव

एकलव्य ने युद्ध में विजय के लिए जरूरी चीजों की सूची गूगल पर खंगाली परंतु उसमें कवच-कुंडल और अंगूठे नहीं मिले

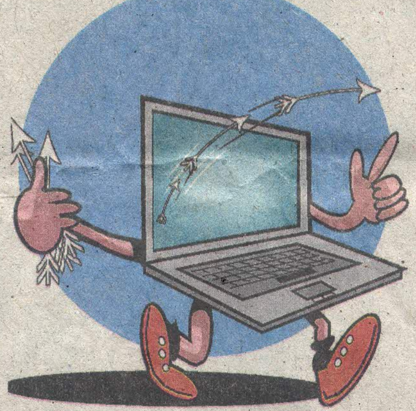

वह उसे अपना वास्तविक शिष्यत्व प्रदान करते हैं तो इसमें गलत क्या है? कुछ भी हो मुझे एक बड़े और महान गुरु का शिष्य कहलाने का सौभाग्य तो प्राप्त होगा। वैसे भी बिना बड़े गुरु का टैग लगे कोई अपनी जगह नहीं बना पाता। इस मामले में मुझे सैलून सबसे अधिक ईमानदार लगे जो किसी नामी हेयर ड्रेसर की फ्रैंचाइजी लेने के बाद भी खुद को उसी का ही शिष्य बताते हैं और हर गली-मुहल्ले में पच्चीस से तीस रुपये हेयर कटिंग पर ब्रांडिंग का मुलम्मा चढ़ाकर लोगों के मन में आम से खास आदमी बनने का भाव भरकर आसानी से खुशी-खुशी 150-250 रुपये तक सीधे कर लेते हैं। बहरहाल एकलव्य नतमस्तक होकर अपने दाहिने अंगूठे को अर्पित करने का उपक्रम करने लगा। एक क्षण के लिए तो गुरु द्रोण भावविभोर हो उठे। अपने शिष्य की ऐसी आस्था एवं समर्पण से गदगद वह उसे सीने से लगाने वाले ही थे कि एकाएक उनका माथा ठनका कि कलियुग का नेटसेवी एकलव्य मुझे सम्मान देते हुए एकनिष्ठ भक्त तो नहीं हो सकता और वह जरूर बड़ा नेता होगा। इस युग में धनुर्धर का अंगूठा मांग लेना और एकलव्य द्वारा खुशी-खुशी वह प्रदान करना अर्जुन को सर्वश्रेष्ठ स्थापित करने के लिए मानक सत्य नहीं है।

वह बोले-रुको एकलव्य शिष्य के त्याग और गुरुदक्षिणा की तुम्हारी यह मिसाल युगों-युगों तक दी जाएगी, किंतु इस युग में न जाने मुझे ऐसा क्यों लग रहा है कि मैं अंगूठे के बजाय कुछ और मांग लूं। एकलव्य ने युद्ध में विजय के लिए मांगे जाने वाले सामानों की सूची गूगल पर खंगाली परंतु उसमें कवच-कुंडल और अंगूठे कहीं नहीं मिले। फिर अनमना सा होकर मर्यादा का ध्यान रखते हुए वह बोला कि ठीक है-गुरुदेव, मांगिए मैं देखता हूं। द्रोणाचार्य बोले, 'हे शिष्य, मुझे गुरुदक्षिणा में तुम्हारी जुबान चाहिए।' एकलव्य सन्न रह गया। बोला कि आपने तो मुझसे आधुनिक युग में युद्ध का सबसे बड़ा हथियार मांग लिया। इस पर मीडिया के माधव अवतरित हुए और बोले कि लोकतंत्र में यह पक्षपात नहीं चलेगा और मैं एकलव्य की जुबान मांगने पर वीटो पावर लगाता हूं। इस युग में सभी को बराबरी से बोलने का अधिकार मिलेगा और बाकी के अस्त्र-शस्त्र तुम खुद चुन सकते है। इसके साथ ही तथास्तु कहकर वह अंतर्धान हो गए। इस पर एकलव्य ने अचानक अवतरित हुए मीडिया के माधव का हृदय की अनंत गहराइयों से अभिनंदन किया कि आज उनकी वजह से वह अपना ब्रह्मास्त्र गंवाने से बच गया। साथ ही उसने फैसला किया कि आगे से किसी भी सेलेब्रिटी शख्सियत के सामने आने पर वह भावनाओं में बहकर बेजा पेशकश करने से बचेगा।

response@jagran.com

वर्ष 27 अंक 216
पृष्ठ 18+8+8+4=38
नई दिल्ली, रविवार
19 फरवरी 2017
गाजियाबाद
मूल्य ₹ 5.00

विश्व का सर्वाधिक पढ़ा जाने

दैनिक जागर

महानता हासिल करने का नुस्खा

हास्य-व्यंग्य

मुरली मनोहर श्रीवास्तव

आज वही असली ज्ञानी और महान है जो फेसबुक पर दनादन पोस्ट डालता रहे और ट्विटर पर चिड़िया उड़ाता रहे

एक जमाना वह भी था जब काम-काज के आधार पर इमेज यानी छवि बना करती थी। यह दौर जरा अलग है। इस दौर में खुद की ब्रांडिंग करनी पड़ती है और ब्रांडिंग का सबसे बड़ा हथियार है सोशल मीडिया। फिलहाल हालात ऐसे हो गए हैं सोशल मीडिया से अनभिज्ञ व्यक्ति अनपढ़ माना जाता है। वहीं जो सोशल मीडिया के मठाधीश हैं वे जानते हैं कि अपने काम से नाम कैसे कमाते हैं और शोहरत कैसे बनाते हैं। मसलन हिट होने का नुस्खा क्या है और आदमी कैसे लाइट में आता है। यहां लाइट का मतलब फोकस यानी सबकी नजरों में चढ़ने से है। 'अजगर करे न चाकरी' जैसी कहावतें अब अपना अर्थ खो बैठी हैं। इस युग में 'नेता करे न चाकरी, चमचा करे न काम' सरीखी बात समझने की दरकार है। आज वही असली ज्ञानी भी है और महान भी जो फेसबुक पर दनादन पोस्ट डालता रहे और ट्विटर पर चिड़िया उड़ाता रहे। आज आदमी की औकात बैंक खाते से नहीं, बल्कि फेसबुक और ट्विटर पर उसकी फॉलोइंग से होती है। कौन कितना बड़ा सितारा है और किसमें भीड़ जुटाने की कितनी बढ़िया कला है?

किसी का लोकप्रिय होना इस पर भी निर्भर करने लगा है कि वह विवाद खड़ा करने की कितनी क्षमता रखता है। आज महानता स्वजनित सामाजिक श्रद्धा या स्वीकृति नहीं है, बल्कि वह समाज पर बनाई अपनी पहचान का प्रतिफल ही है। इस किस्म की महानता भी अब मार्केटिंग के दायरे में आ चुकी है। आपको अपनी इमेज की ब्रांडिंग से पहले ही तय करना होगा कि आप अपने लिए कौन सी महानता चाहते हैं। आपको सामाजिक सेवा वाली महानता चाहिए या फिर आध्यात्म और योग वाली महानता? अगर कला-साहित्य या फिल्मी दुनिया वाली महानता चाहते हैं तो उसके लिए अलग तरह की तिकड़म भिड़ानी होगी। इसी तरह सियासी मोर्चे की महानता अलग तरह की अर्हता की मांग करती है। क्या आप खेल जगत की बड़ी शख्सियत बनने को लालायित हैं या फिर प्रशासन में सुधार की महानता वाला कीड़ा आपको फायदा पहुंचाएगा? क्या आप महिला कल्याण से जुड़ी महानता के इच्छुक हैं या फिर फुटपाथ पर संघर्ष कर रहे लोगों के रहनुमा बनने वाली महानता अर्जित करना चाहते हैं या फिर आप वैसे शख्स हैं जिसे बेस्टसेलर किताब या रियलिटी शो वाली महानता भाती है? हर किस्म की महानता की अपनी अलग कीमत है। इस पर जितना गुड़ डालोगे, मिठास उतनी ही बढ़ेगी वाली कहावत मुफीद बैठती है। जुदा किस्म की महानता अपने-अपने तरीके से फायदा दिलाती है।

कृपया महानता को मानसिक संतुष्टि से जोड़कर मत देखिए, क्योंकि आज अध्यात्म के शिखर पर बैठा योगी भी सोशल मीडिया के रंग में किसी भोगी के जैसा ही नजर आ रहा है। भौतिक जीवन में भले ही वह सब कुछ त्यागने का उपदेश दे रहा हो, लेकिन अंदर की बात यह है कि वह सब कुछ समेटने पर आमादा है। इस दौर में अगर कुटिया, टेंट और आश्रम शब्द से सादे जीवन का अनुमान लगाएंगे तो धोखा खा जाएंगे। इन दिनों आश्रम पांच सितारा होटलों को मात दे रहे हैं। स्वीमिंग पूल से लेकर विदेशी पकवान बड़ी आसानी से उपलब्ध हैं। बस आपकी श्रद्धा क्षमता और भोग की इच्छा पर निर्भर करता है कि आप किस किस्म के आश्रम का चुनाव करते हैं। मैं पहले ही कह चुका हैं कि पूरा खेल ही इमेज की ब्रांडिंग का है। एक बार तय कर लीजिए कि खुद के लिए आप कौनसी छवि चुनना चाहते हैं और फिर उसके मुताबिक अपनी प्रोफाइल बनवा लीजिए। फिर आइटी में महारत रखने वाले दो-चार चेले-चपाटे ले आइए और फिर दुनिया में अपने नाम की चमक देखने के लिए तैयार हो जाइए। आज किसी के बारे में भी मालूमात करने का सबसे आसान तरीका है गूगल। बस गूगल करिए और जानकारी के नाम पर वह जो भी आपको परोसकर दे दे वही आपके लिए प्रमाणिक जानकारी हो गई। बस इंटरनेट रूपी सागर में अपने नाम की पुड़िया घोल दीजिए फिर डेटा प्रवाह के इस दौर में चहुंओर आपके नाम का प्रताप नजर आने लगेगा। अगर कोई विकास की बात करे तो फौरन ही गूगल पर आपका नाम आ जाए या किसी संत का जिक्र करने पर ही गूगल आपकी तस्वीर पेश कर दे। अगर कुछ खर्चा-पानी करके आप इसमें पारंगत हो गए तो यकीन मानिए कि महानता को आपके कदम चूमने से कोई ताकत नहीं रोक सकती। आपका कद आसमान को छूने लगेगा। तमाम भौतिक सुख-सुविधाएं आपके पास खिंची चली आएंगी। आप न जाने कितनी उम्मीदों के चिराग और तमाम दीन-दुखियों के तारणहार बन जाएंगे। आप भगवान बन जाएंगे और अपने सामने भक्तों का तांता पाएंगे। आपकी गर्दन को पुष्पमालाओं की आदत लग जाएगी और अपने दर्शन देकर आप सोसायटी को धन्य करेंगे। इस तरह आप महानता के हैंगओवर में जीने लगेंगे। आज किसी भी क्षेत्र में हाथ आजमाना उस पर छाप छोड़ना और बनाए नाम को भुनाना मुश्किल नहीं रह गया है।

आज महानता का हैंगओवर सोशल मीडिया और मार्केट के हाथ की कठपुतली है। हालांकि कालजयी और किंवदंती बनने का रास्ता यहां से गुजरता है या नहीं, अभी यह कह पाना मुश्किल है। एक बात और ब्रांडिग की हिंदी कलई और हैंगओवर के सत्य को देखें तो इसी जीवन में कलई और हैंगओवर का उतर जाना सच्चा अध्यात्म है। सो इमेज की ब्रांडिग और महानता के हैंगओवर के बीच जो आम आदमी जीवन के सत्य को समझ लेता है वह बाजार से गुजरते हुए कबीरवादी चिंतक हो जाता है और खरीदार नहीं होता। उसे ओढ़ी हुई महानता के हैंगओवर का अहसास मीडिया से दूर खड़े होकर ही हो जाता है।

response@jagran.com

नई दिल्ली । मंगलवार • 29 सितम्बर • 2015

राष्ट्रीय सहारा
25
रजत जयंती वर्ष

षद की सीट

चलते-चलते/मुरली मनोहर श्रीवास्तव

एक सेल्फी तो बनती है!

सेल्फी के इस दौर में लगता है, सेल्फी के मार्फत यह दिखाने की कोशिश होती है कि आज फलां तीर मार लिया। खैर कई बार लगता है किसी भी उपलब्धि का तब तक कोई मतलब नहीं है जब तक उसे अपने जानने वालों तक न पहुंचाया जाये। इतना ही नहीं, अपनी उपलब्धि को जब तक हम स्वयं नहीं बताएंगे, लोग बाग बे-वजह भला हमसे क्यों जुड़ेगें। अभी मेहरा जी की व्हाट्सएप पर नई सेल्फी देखी। ध्यान से देखा तो पता चला मंदिर में प्रसाद चढ़ाने गये थे। साथ में बच्चा भी चल रहा था मुझे समझते देर न लगी कि हो न हो बच्चे का रिजल्ट अच्छा आया है। मैंने भी सेल्फी को लाईक कर बधाई देने में देर नहीं की। यकीन मानिए, मेहरा जी इतने गद्गद हुए कि बच्चे के पास होने की मिठाई के साथ ही शाम की चाय भी पक्की हो गई।

खैर शाम को वर्चुवल बधाई के बाद एक्चुअल बधाई देने पहुंचा तो देखा मेहरा जी के घर आने-जाने वालों का तांता लगा हुआ था। सभी को चकाचक लडडू खिलाये जा रहे थे। बच्चे ने बारहवीं में नाइंटी परसेंट से अधिक स्कोर किया था और मां-बाप फूले नहीं समा रहे थे। इतना ही नहीं, उसके इंजीनियरिंग में दाखिले का रास्ता भी साफ हो चुका था क्योंकि ऐंट्रेंस टेस्ट में रैंक भी ठीक ठाक थी। यहां तक तो ठीक था मगर सीन तब मारक हो गया जब बच्चे के साथ सेल्फी खिंचवाने का क्रेज ज बढ़ गया। जिसे देखो, वही बच्चे के साथ अपनी सेल्फी लेने पर अड़ा था। कयास लगाया कि इस होनहर बच्चे के साथ फोटो में कैद हो लेंगे तो हो न हो, कल जब यह कोई बड़ा अफसर बन जाएगा तो लोगों के देखने-दिखाने और इंप्रेशन जमाने के काम आएगी। मुझे वह जमाना याद आ गया जब एक-एक फोटो खिंचवाने के लिए दस बार सोचना पड़ता था। शादी ब्याह में तो आधे से ज्यादा मेहमानों पर फ्लैश चमका दिये जाते थे सिर्फ यह दिखाने के लिए कि आपकी फोटो खिंच गयी है लेकिन हकीकत तब पता चलती जब एलबम बन कर आती। सच तो यह है कि उस एलबम से ही पता चलता था कि कौन न सा रिश्तेदार कितना अपना है और कौन दूर का।

खैर जब टेक्नालाजी इतनी सस्ती और इंप्रूव हो गई है तो हर मौके पर सेल्फी तो बनती ही है। इसे कोई आत्ममुग्ध होना समझे तो समझता रहे। अभी तो आलम यह है कि हमारे आफिस में कोई हेड आफिस के बड़े बाबू से भी मिलकर आता है तो स्टेटस में सेल्फी चिपका देता है। वैसे सेल्फी का आलम यह है कि कोई किसी रेस्टोरेंट में जाये, परांठे वाली गली में घूमे या फिर किसी बिल्डिंग के सामने से गुजरे- सेल्फी लोड किये बिना किसी का दिल नहीं मानता। ऐसे भी बड़े लोग मैंने देखे जो आम लोगों के साथ सेल्फी लेकर चिपकाने में अपनी शान समझते हैं। गोया सेल्फी न हो गई आदमी का स्टेटस सिंबल बन गई। वह दिन दूर नहीं जब मै लोगों को घर में कील ठोकते या शर्ट में बंटन टांकते भी सेल्फी चिपकाते देखूंगा। सिंप्लीसिटी से लेकर हाई फाई दिखाने के लिए बस एक सेल्फी काफी है। आप हिल स्टेशन जायें न जायें किसी बर्फीले पहाड को बैक ग्राउंड में रख कर सेल्फी ले लें। स्टेटस ऊपर उठते देर नहीं लगेगी। ऐनी वे, आप इसे कुछ भी समझें, कुछ भी कहें-बदलते वक्त के साथ आज आप अगर एक साईकिल खरीद रहे है या चंपू ढाबे पर लस्सी पी रहे हैं तो उस के साथ भी एक सेल्फी तो बनती ही है।

नई दिल्ली । बृहस्पतिवार । 24 सितंबर 2015 अमर उजाला

पिछड़े होने का सुख

नुक्कड़

अभी दो-चार दिन पहले मैं बाल कटाने गया, तो देखा कि मेरा हेयर ड्रेसर एक से दूसरी कटिंग के बीच मोबाइल पर स्टेटस अपडेट कर रहा था। उसी समय बाल कटवाने की सीट पर बैठा बंदा सेल्फी ले रहा था। मैं समझ गया कि यह भी यहां से निकलने के बाद सेल्फी लगाकर अपना स्टेटस चमकाएगा। आजकल बिना स्टेटस जीना मुश्किल है। स्कूल गोइंग बच्चे तक फेसबुक आईडी बनाते हैं और पासवर्ड पैरेंट्स को नहीं बताते। पैरेंट्स भी खुश होते हैं कि बच्चा अपने राइट्स के लिए अभी से इतना कांशस है। कई बार उन्हें लगता है कि बर्थडे पार्टी में जा रहे बेटे को ड्रिंक्स की लिमिट के बारे में बता दें, पर वे ऐसा नहीं कर पाते।

यह तो वही मिडिल क्लास मेंटेलिटी हुई कि बारहवीं पास करने के बाद भी बाबूजी कान खींचकर दो-चार थप्पड़ जड़ देते थे और शाम साढ़े छह के बाद घर लौटने पर अम्मा आसमान सिर पर उठा लेती थी। वह भी कोई लाइफ थी कि जन्मदिन की बधाई देने वालों को बताशे बांटकर ढोलक पर गीत गा दिए! आज अगर बच्चा मॉडर्न ड्रेस पहन कर लटके-झटके देते देर रात नहीं लौटेगा, तो पड़ोसी यही सोचेंगे कि इनकी कोई सोसाइटी नहीं है। और कहीं ड्रिंक्स पर रेस्ट्रिक्शन लगा दी, तो दोस्त के पैरेंट्स हमें कितना पिछड़ा हुआ समझेंगे।

कुछ लोग स्टेटस के लिए ही ताउम्र जीते हैं। वहां बातचीत ब्रांडेड शर्ट, जींस, चश्मा, फ्लैट और गाड़ी के मॉडल के इर्द-गिर्द घूमती है। एक आदमी बड़ी गाड़ी एक्सचेंज ऑफर में लेने की बात करता है, तो दूसरा पचास हजार के मोबाइल सेट पर मैसेज पढ़ते हुए उसकी बात इग्नोर कर सिर झटक देता है।

एक मैं हूं कि मेरे शर्ट, पैंट और मोबाइल पर कोई अचरज नहीं जताता, न ही अपनी पुरानी गाड़ी पार्क करने में मुझे समस्या आती है। सुबह टहलने और घर के सात्विक भोजन से संतुष्ट रहने के कारण नामी होटलों और बड़े अस्पतालों में जाकर सेल्फी लेने से भी बचा हुआ हूं। स्टेटस न होने के बावजूद मैं स्टेटस रखने वालों से ज्यादा सुखी हूं, तो इसमें मेरा क्या कुसूर है!

मुरली मनोहर श्रीवास्तव

10 राष्ट्रीय सहारा
नई दिल्ली। शुक्रवार • 28 अगस्त • 2015

कटाक्ष

एक बहस की क्लिपिंग

मुरली मनोहर श्रीवास्तव

आजकल ड्राइंगरूम आफिस से लेकर टीवी स्क्रीन तक पर बस बहस ही बहस का माहौल दिखाई देता है। यह बहस इतनी बड़ी है कि कभी खत्म होने का नाम ही नहीं लेती। बक्त कम पड़ जाता है पर बहस का अंत नहीं होता। मैंने सोचा क्यों न ऐसी ही किसी महत्वपूर्ण बहस की क्लिप ऑफ द रिकॉर्ड आपको पेश कर दूं।

सीन किसी उच्च स्तरीय मीटिंग का है। वैसे चाहे यह गली मुहल्ले की नुक्कड़ बहस हो या वास्तव में किसी गंभीर मुद्दे पर चर्चा, उच्च स्तरीय शब्द या भाव का आजकल होने वाली बहस या मीटिंग्स में बहुत ज्यादा महत्व बढ़ गया है। यह भी कि चाहे मैनर का मामला हो या भाषा का- उच्च स्तरीय के संबंध में मीटिंग (नुक्कड़ बहस या गंभीर) के लेवल में ज्यादा फर्क नहीं रह गया है। अर्थात वर्तमान समाजवाद में आम और खास का फर्क मिट गया है।

बहरहाल, सीन कुछ इस तरह है- कोई बीस पच्चीस लोग किसी साहबनुमा प्राणी की अंडाकार टेबिल के चारों ओर बैठे हैं। नोट करें, लोगो की सहभागिता बढ़ते जाने के कारण गोल मेज अब अंडाकार टेबिल में बदल गयी है। पहले गोल मेज के इर्द-गिर्द बैठ कर जो फैसला चार पांच लोग ले लेते थे और लागू कर देते थे, आज नये दौर में बीस पच्चीस लोग मिल कर भी आम सहमति से वह फैसला नहीं ले पाते। लागू करने की बात तो छोड़ ही दीजिए। खैर, हालात बड़े बहसनुमा हैं।

हाल के बाहर संतरी और पीए गेट को घेर के खड़े हैं। अंदर बहस उस पर चल रही है जो अपनी समस्या ले कर साहब से मिलना चाहता है। पर उसे सबने रोक रखा है। इतना ही नहीं, इनडायरेक्ट वे में कई बार वे बता भी चुके हैं कि भैये अब तू निकल ले। यहां तेरी दाल आज तो नहीं गलने वाली पर वो नालायक है कि मानता ही नहीं। भीतर ऐजेंडा लैपटाप से एलसीडी स्क्रीन पर आये, उससे पहले ही चेयरमैन पर किसी ने उछाला, 'सर आज तो आपकी शर्ट गजब ढा रही है किस स्टोर से ली।' तभी दूसरे ने तुक्का मारा- 'यार आजकल माल में बिग सेल चल रही है। वैसे मैचिंग टाई बता रही है यह आफर वाली है। लगता है इस बार शर्ट के साथ टाई फ्री थी। क्यो सर!'

चेयरमैन साहब ऐसी बहस के आदी थे और बिना कुछ बोले मुस्कुरा दिये। तभी बगल वाले ने झोंका- 'सर आज मेहरा को देखिए, कुछ ज्यादा ही स्मार्ट नहीं लग रहा है।' तभी पटोले ने क्लीयर किया, 'सर, कल ही मैंने इसे नये हेयर डाई का पैकेट खरीदते देखा था।' इधर मेहरा भी बस हल्के से स्माइल से खुद को बचाता हुआ बोला, 'अब क्या है सर, कुछ साल ही तो बचे हैं सर्विस के। सोचता हूं तब तक तो ढंग से रह लूं। फिर क्या है लाइफ में...' 'ओह तो मेहरा जी ढंग से रहने का यह मतलब होता है।' एक सीनियर मैडम ने चुटकी ली तो मेहरा जी को लगा कि आज डाई के पैसे वसूल हो गये। वे पचपन की उमर मे भी शर्माते हुए नजर आये और मीटिंग में मैडम मेहरा पर बम फेंकती। हां बाकी शांत स्वभाववालों को थोड़ी आत्मग्लानि हुई कि भले ही डिपार्टमेंटल मीटिंग थी, कम से कम शर्ट तो ब्रांडेड पहन ही लेनी चाहिए थी। ये रोज वाले कपड़े फार्मल मीटिंग में कहां जंचते हैं। अपनी तरफ किसी का ध्यान ही नहीं है। सबसे ज्यादा काम करो और बोल बाल के नम्बर पटोले जैसे चिरकुट खींच लेते हैं।

इधर मिनिरल वाटर हर सीट पर आ चुकी थी। लोग आगे की बहस के लिये गला तर कर रहे थे। तभी बाहर बैठे शख्स ने भीतर झांकना चाहा जिसके भले के लिए मीटिंग हो रही थी कि संतरी ने उसे घुड़क दिया- देख नहीं रहे हो, मीटिंग चल रही है। वह सहम गया।

इधर नाश्ता आ गया था। चेयरमैन बोले, 'पनीर कटलेट तो टेस्टी है- किससे आर्डर किये'! आयोजक बोला, 'सर वो आपके फेवरेट कैटरर को ही टोटल मीटिंग का कांट्रेक्ट दे दिया था।' 'दैट्स गुड! और लंच का मीनू क्या है...!' ऐंड सो ऑन मीटिंग चालू हो चुकी थी।

इधर एलसीडी पर प्रेसेंन्टेशन चल रही थे जिसमें आम आदमी के विकास के आंकडे और उसे मिल रही सुविधाओं का वर्णन था उधर मीटिंग में बहस चालू थी। हां शाम होते-होते ऐजेंडा और ऐक्शन टेकेन रिपोर्ट फाइनल हो चुकी थी। फ़ाइनल फाइंडिग के लिए इसी तरह की उच्च स्तरीय अगली मीटिंग की डेट फाइनल हो गई। बाहर बैठे अधनंगे बदन वाले के लिए प्रेस कांफ्रेंस में मीटिंग की फाइंडिंग किसी प्रोफेशनल पब्लिक रिलेशन आफिसर द्वारा बताई जा रही थी जो अच्छी तरह जानता था कि किस तरह के सवाल का जवाब कैसे देना है।

नई दिल्ली । बृहस्पतिवार । 27 अगस्त 2015 अमर उजाला

प्याज टिकने नहीं देता प्राउड

तमाशा

भाई साहब, जैसे ही आप आज किसी वाट्स ऐप ग्रुप को ज्वाइन कर लेते हैं, ज्ञान के भंडार से भर जाते हैं। दुनिया भर में क्या चल रहा है, यह पता कर पाना आज मात्र अखबार और खबरिया चैनलों के भरोसे रहकर नहीं हो सकता। मजा यह भी कि जैसे ही कोई नई डेवलपमेंट होती है, सूचना का आदान-प्रदान प्रारंभ हो जाता है, उसे आगे बढाने की रिक्वेस्ट के साथ। चुटकुलों के नीचे तो लिखा रहता है, मार्केट में नया है, आगे बढ़ाओ। खैर, वाट्सेपिया ज्ञान के माध्यम से प्राउड टु बी एन इंडियन का दौर भी बीच-बीच में चलता है, जिससे हमें पता चलता है कि दुनिया की किन-किन बड़ी कंपनियों के सीईओ भारतीय हैं या किस बड़े इंटरनेशनल मिशन में किस भारतीय का कितना योगदान रहा है।

मगर दिक्कत तब आती है, जब इस वाट्स ऐप संदेश के बीच में प्याज का ध्यान आ जाता है। क्या बताएं, पेट्रोल के रेट कम होने का लुत्फ उठाने से पहले ही प्याज की कीमत हमें आंसुओं से भर देती है। कहां हम प्राउड टु बी एन इंडियन के हैंगओवर में रहते हैं, और कहां एकाएक बस का धचका हमें सड़क के बरसाती पानी में उसके टायर के आने का आभास करा देता है। जैसे ही हम भीड़ में खड़े होते हैं, प्राउड पता नहीं, कहां खो जाता है, और बहस बस कुव्यवस्था, महंगाई और अराजकता पर शुरू हो जाती है। बस हो या मार्केट या शापिंग मॉल-सिस्टम को कोसने में न जाने कहां से एकता झलकने लगती है! लगता है, जेनरेशन गैप एक बेमानी मुद्दा है।

अर्थात प्याज के मुद्दे पर फेसबुक, वाट्स ऐप पेट्रोल वाहन और साइकिल वाले एक सुर में महंगाई की बात करते हैं। बड़े से बड़ा ज्ञानी जब जिंदगी की हकीकत से टकराता है, तो सारा ज्ञान धरा रह जाता है। कहने का अर्थ यह है कि लाइट मूड में चल रहे मैसेज भी गंभीर संदेश दे देते हैं। प्राउड तो बहुत होता है हमें अपने इंडियन होने का, पर क्या करें ये प्याज और पेट्रोल उस प्राउड को स्थायी भाव में टिकने नहीं देते।

मुरली मनोहर श्रीवास्तव

नई दिल्ली । शुक्रवार । 27 मार्च 2015 अमर उजाला

चिंता पर चिंतन

तमाशा

आजकल चिंता व्यक्त करना मॉडर्न ट्रेंड हो गया है। जिसे देखिए, वह बस चिंता व्यक्त करता नजर आता है। टीवी हो या गली-मुहल्ले में चल रही बातचीत हर कोई चिंतित है। मामला महंगाई का हो, देश के हाल का या फिर नौकरी, शिक्षा आदि कोई भी विषय हो, हर तरफ बस चिंता ही चिंता व्याप्त है।

सोशल मीडिया में एक वर्ग कविता के माध्यम से खेती-किसानी और बेमौसम बारिश पर घोर चिंता व्यक्त कर रहा है। उसी तरह टीवी पर ढेर सारी इमोशनल रिपोर्टें कभी सीमा की, कभी समाज की, कभी खेत-खलिहान की चिंताजनक स्थिति दिखाकर हमको-आपको ड्राइंग रूम में चिंतित बनाए रखती हैं।

चिंता का आलम बहुत विस्तृत है। जैसे क्रिकेट एक्सपर्ट्स क्रिकेटर के खराब फॉर्म की चिंता कर डालते हैं। ऐसे में टीवी पर टाइम स्लॉट बदलने पर पता ही नहीं चल पाता कि कौन-सी चिंता ज्यादा गंभीर है। मुझे लगता है एक चिंता शब्द हर तरह की चिंता को परिभाषित करने में सक्षम नहीं है। हमें चिंता में भी कैटेगरी डालनी चाहिए। जैसे फसल खराब होने की चिंता विश्व कप में भारत के प्रदर्शन पर होने वाली चिंता से अलग है। इसी तरह कांग्रेस की कमजोरी या आप में पड़ी फूट से पैदा चिंता परीक्षा में हो रही धुआंधार नकल पर ईमानदार छात्रों की बढ़ती चिंता से अलग है।

किसी जमाने में चिंता बड़ी प्रभावशाली हुआ करती थी। लेकिन अब तो चिंता पर चिंतन करते हुए भी यह सोचा जाता है कि यह चिंता किस स्तर की है। सामूहिक चिंता व्यक्त करते-करते सदियां बीत गईं, इसके बावजूद जिनकी चिंता की गई, उनकी हालत तो बद से बदतर होती गई है। जैसे-किसानों की चिंता के बावजूद उनकी हालत नहीं सुधरती। विश्व कप में विराट कोहली के खराब फॉर्म पर क्रिकेट प्रेमियों ने जितनी चिंता की, अपनी बल्लेबाजी सुधारने के लिए खुद कोहली अगर उसका दस फीसदी ही चिंता व्यक्त करते, तो उनका प्रदर्शन सुधर जाता। यानी चिंता पर सिर्फ चिंतन करना काफी नहीं है। इसके बावजूद हम चिंतन करने के सिवाय और कर भी क्या सकते हैं!

मुरली मनोहर श्रीवास्तव

10 | राष्ट्रीय सहारा

नई दिल्ली | मंगलवार • 10 फरवरी • 2015

चलते-चलते/मुरली मनोहर श्रीवास्तव

सर्वे का है जमाना

आजकल सर्वे वालों ने इतना कन्फ्यूज्ड कर दिया है कि सही-गलत समझ ही नहीं आता। हमारे पड़ोसी मेहरा जी ने अपने स्कूल गोइंग बच्चे को पीट क्या दिया कि अपराधबोध से ठीक से खाना नही खा पा रहे। मुझे बच्चे की कम, मेहरा जी की काउंसलिंग की अधिक जरूरत महसूस हो रही है। किसी से कुछ कहो तो वह गूगल में सर्च डाल फैक्ट्स दिखाने लगता है। मसलन मैं मेहरा जी से कहूं कि बच्चे गलती करते रहते हैं और पिटते भी रहते हैं तो मेहरा जी इंटरनेट खोल बच्चों को पीटेने से हुई हानि की रिपोर्ट दिखा देंगे। मैंने नैतिक दायित्व का कोटा पूरा करते हुए सलाह दे डाली कि बच्चे की पिटाई पर सर्वे करा लो। आपका अपराध बोध कम हो जाएगा और लोगो को बच्चे की पिटाई के विषय में डायरेक्शन भी मिल जायेगी। फिर क्या था- शाम तक उन्होंने अपने व्हाट्सएप और एसएमएस ग्रुप में लोगों की राय जानने के लिये सर्वे पोस्ट कर दिया कि स्कूल गोइंग बच्चे को पेरेंट्स को पीटने का अधिकार है या नही ?

मेहरा जी ने शाम को मुझे भी बेटे से बुलवा भेजा कि पापा किसी सर्वे के रिजल्ट पर डिस्कस करने को बुला रहे हैं। मैंने सिंपैथी दिखाते हुए पूछा- बेटा पापा की पिटाई से चोट तो नहीं लगी? वह बोला- कौन सी पिटाई अंकल! यहां तो इतने इंसिडेंट्स होते रहते हैं कि कुछ याद नही रहता कि कल हुआ क्या था? मुझे तो बस होम वर्क याद रहता है कि अगर नही किया तो कल फिर पिट जाऊंगा। मैं उसके पिटने के भोलेपन के कांसेप्ट पर मर मिटा।

बहरहाल, ननिहाल से बंटी के मामा और नाना-नानी का मत था कि बच्चे भगवान का रूप होते हैं इसलिए बंटी की पिटाई अपराध की श्रेणी में आती है और मेहरा जी को माफ नहीं किया जा सकता। वहीं दादा-दादी और चाचा का मत था कि बच्चों को लाइन पर रखने के लिए कभी-कभी बे वजह भी पीटा जा सकता है। मोहल्ले वालों में से कुछ ने नो कमेंट लिखा तो कुछ कह रहे थे अपने बच्चे को पीटो या मत पीटो हमें क्या! खैर, ऑनलाइन सर्वे चालू था और पीटने या न पीटने के सदर्भ में लगातार मिल रहे वोटों के अनुसार मेहरा जी के दिमाग के साफ्टवेयर में रिजल्ट के परिणाम धड़ाधड़ बदल रहे थे। शाम तक जो पलड़ा पीटने वालों की तरफ भारी था-रात दस बजते-बजते न पीटने वालों की तरफ झुक चुका था।

मैं मेहरा जी की चाय पकौड़ी खाने के बाद भी सर्वे पर ठोस राय दे पाने के काबिल नही था। अन्य मित्र भी बे-वजह दो ढाई घंटे से नॉन स्टॉप बहस से थककर घर से निकलने का रास्ता ढूंढ़ रहे थे कि बंटी ने ऐंट्री ली और पूछा-आप किस घटना पर बहस कर रहे हैं। क्या मैं भी अपने दोस्तो से सर्वे करा सकता हूं? इसके बाद सबने इस सवाल के जवाब के लिये मेहरा जी से बंटी के सर्वे पर भरोसे का आग्रह करते हुए रास्ता पकड़ना ठीक समझा। हां इतना हमें समझ आ चुका था कि आज के जमाने में सर्वे से बढ़कर टाइम पास कुछ नहीं है।

नई दिल्ली । शुक्रवार । 23 जनवरी 2015
अमर उजाला

मीठी-मीठी बातों से बचना जरा

नुक्कड़

आजकल लोगों की बातों में इतनी मिठास है कि ज्यादा बातचीत करें, तो डायबटीज होने का खतरा पैदा हो जाता है। वैसे बातचीत के लिए अब लोग बचे भी कितने हैं? परिवार छोटे होते जा रहे हैं और रिश्ते-नाते सिमटते जा रहे हैं। सो खाली स्थान भरने के लिए सोशल मीडिया का जाल और अनचाही कॉल्स का जंजाल है। आजकल अनचाही कॉल्स पर भी लोग-बाग पांच-सात मिनट गप्पें लड़ा लेते हैं। रहा सोशल मीडिया का, तो अनजाने कमेंट्स, लाइक्स और फॉलोवर्स की गिनती यहां स्टेट्स सिंबल बन गई है। एक शेर रीडिफाइन कर रहा हूं-उम्रे दराज मांगकर लाए थे चार दिन, दो स्टेटस पोस्ट करने में कट गए दो कमेंट के इंतजार में।

आज जिसे देखिए, वह आदर्शवाद पर टिका दिखाई देता है-समाज में नैतिकता होनी चाहिए, करप्शन कम होना चाहिए, ट्रैफिक रूल्स नहीं तोड़ने चाहिए, बड़ों का आदर करना चाहिए, आदि-आदि। ये सारी बातें हमें छोड़कर बाकी सब को करनी चाहिए। जहां कुछ करने की बात आती है, तो हमारे पास अपनी जिंदगी में की हुई ढेर सारी अच्छाइयों के रिकॉर्ड भरे पड़े हैं। हम किस दिन कौन-सा भला काम कर चुके हैं, यह रिकॉर्ड सहित बताना नहीं भूलते।

आपसे कहां तक बताएं मिठास भरी बातों का सिलसिला। कहीं शॉपिंग करने जाइए, तो दो-चार लोग फ्री गिफ्ट कांटेस्ट का फॉर्म लिए घूमते मिल जाएंगे, जिसमें वे पांच रुपये का चम्मच पकड़ा कर आपकी दी हुई इनफॉरमेशन से आपकी खरीदारी की औकात टटोलते हैं। उनका बस चले, तो अपने सर्वे में आपका बैंक अकाउंट नंबर और एटीएम पिन जैसी गोपनीय सूचना तक पूछ लें। मीठी-मीठी बातें सुनते हुए मुझे बचपन में सुना गाना याद आता है-*मीठी-मीठी बातों से बचना जरा, दुनिया के लोगों में है जादू भरा।* इधर आप मिठास में उलझे, उधर आपकी जेब कटी। मैं एक शेर से अपनी बात समाप्त करना चाहूंगा-*मुझे अच्छे लोग बहुत मिले मैं उनके बोझ से दब गया, कभी कभी जो मिलो मुझे तो खराब बन के मिला करो।*

मुरली मनोहर श्रीवास्तव

10 | राष्ट्रीय सहारा

नई दिल्ली | मंगलवार • 5 अगस्त • 2014

चलते-चलते/मुरली मनोहर श्रीवास्तव

बाइक बड़ी कि भैंस!

जब से बड़े ब्रांड में भी मिलावट की खबर पढ़ी है, गौशाला की शरण में हूं। जैसे ही अखबार में मिल्क प्रोडक्ट में मिलावट की खबर ने जोर पकड़ा, उसी पेपर में नेचुरल मिल्क प्रोडक्ट और बायो प्रोडक्ट को बढ़ावा देने वाला पम्फलेट भी साथ आया। विज्ञापन मोबाइल फोन नम्बर से लैस था यानी मार्केटिंग स्ट्रेटिजी में कोई संदेह की गुंजाइश न थी। वह तो घर पर शुद्ध दूध सप्लाई का दावा कर रहा था पर मन को मात्र दावों से संतुष्ट कर पाना संभव नही था। सो उससे गाय भैसों का हिसाब और डेयरी का पता तक पूछ डाला। मैने कहा, देखो भाई, मैं सदियों पुराना बाप-दादा का अजमाया नुस्खा ही अपनाऊगां दूध की असलियत पर भरोसे के लिए। सामने ही दुहवा कर ले जाऊंगा। वह बोला, आपकी मर्जी। और मेरी मार्निंग वॉक शुद्ध दूध के नाम खुशी-खुशी निछावर हो गई।

खैर एक दिन गौशाला के चौधरी का बेटा बाप से बहस करता पाया गया- सुन बापू एक तो जे मोबाइल म्हारे से ना चलता। ये नया स्मार्ट फोन लाया सी इसमें फेसबुक लोड करान है। बापू बोला- तैने भैसे सम्हालन से फुर्सत हो गई जे मोबाइल संभालेगो। बेटा बोला म्हारे दोस्त आजकल फेसबुक पर दूध बेच करोड़पति हो गये। थारे दो चार भैसन में कुछ नही रक्खा। मन्नै डेरी फार्म का एडवांस बिजनेस करना सी। बाप को क्या पता कि इंटरनेट क्या-क्या कर सकता है। पर चौधरी के बेटे ने जैसे ही सुना बाइक सस्ती हो गयी, वह नया राग लेकर बैठ गया। बापू मन्नै भैंस ना खरीदनी। बाइक दला दो। बापू गरम हो बोला-जे बाईक को के करेगा! बापू सुन, जो चीज सस्ती होवे सोई खरीदी जावे आज के जमाने में। भैसन से के मिलेगो! पर जे तूने भैसन के पैसे से बाईक खरीद लई तो काम कैसे बढ़ेगो! बाप बोला। बापू तू अपना दिमाग तो लगा मत! देख मोहे बाईक खरीद लैन दे। भैसन से ज्यादा कमाई करा के न दिखा दू सो कहे। खैर अगले ही दिन बाप फिर सिर पर हाथ धरे बैठा था और बेटा नई बाइक गली में घुमा रहा था।

नया सीन यह है कि बेटे ने आन लाइन र प्योर दूध का ऑर्डर लेना शुरू कर दिया है और बाइक से फ्री होम डिलिवरी दे रहा है। चौधरी की उम्र गोबर सानी में ही बीत गयी और बेटा बायो प्रोडक्ट की इंटरनेशनल मार्केटिंग के गुर सीख रहा है। किसी ने बता दिया है कि असली गो मूत्र की आयुर्वेद में बड़ी मांग है इसके बाद वह शुद्ध गो मूत्र की डायरेक्ट डिलिवरी का ऑप्शन ढूढ़ रहा है। उसकी बाईक हर कदम पर उसका साथ देती है। आजं उसकी बाईक बाईक न हो कर दुधारू गाय हो गयी है। आप ही फैसला करें- इस जमाने में बाईक बडी कि भैंस।

नई दिल्ली । मंगलवार । 5 अगस्त 2014 अमर उजाला

कीचड़ उछालने का फैशन

बेस्टसेलर बनने के लिए आज लोग अपनी किताब में न जाने कितने खुलासे किए जा रहे हैं। अगर पारदर्शिता का लेवल इतना बड़ा हो जाएगा कि कौन-सी सब्जी में वर्मा जी कौन-सा मसाला डालते हैं, यह उसका पड़ोसी फेसबुक पर पोस्ट करने लगेगा, तो बताइए, जीना कितना मुश्किल हो जाएगा? खुलासा करने का यह रोग किसलिए? अपनी कुंठा, अपनी भड़ास, अपनी खुन्नस निकालने के लिए। जो जिस ऊंचाई पर पहुंच गया है, वह उससे संतुष्ट नहीं है। आईएएस बन गए। चुनाव लड़ लिया, मंत्री बन गए। सारे सुख-साधन कदमों में पड़े हैं, पर दिल है कि मानता नहीं। अचानक फितूर सवार होता है लिखने का।

किताब बेचने के लिए कुछ मसाला चाहिए। सो जो साहस वे अपने कार्यकाल में नहीं जुटा पाते, वह रिटायर होने के बाद जुटाते हैं। जो काम वे पावर में होते हुए नहीं कर पाते, वे अंतरात्मा की आवाज पर किताब लिखकर पूरा करते हैं। किताब में कही बातें कितनी सही हैं, कितनी गलत, कितनी सच्चाई बताने के लिए हैं और कितनी सेल बढ़ाने के लिए, कितनी राज उजागर करने के लिए है और कितनी अपनी वैल्यू बढ़ाने के लिए, यह तो जो लिख रहा है, वही जाने। पर आज फेसबुक और इंटरनेट पर अभिव्यक्ति की आजादी के नाम पर कुछ भी लिखकर पोस्ट कर देने के जमाने में अगर लॉयल्टी का लेवल इतना गिर गया, तो लोग भरोसा किस पर करेंगे?

नुक्कड़

अगर किसी के दिल में आग है व्यवस्था से लड़ने की, किसी के दिल में चाहत है समाज को बदलने की, यदि सही मायने में कोई कुछ करना ही चाहता है, तो हुजूर, उस समय सामने आइएं न, जब आप उस व्यवस्था से सारे लाभ ले रहे हैं! उस समय आवाज उठाइए न, जब आप फैसला लेने की स्थिति में हैं! किताब लिखनी ही है, तो जेनुइन राइटर बनकर सड़क की धूल फांकिए। और हां, अपनी किताब और अपने लेखन को ऑथेंटिक बनाने के लिए अपने करीबी लोगों पर कम से कम कीचड़ तो मत उछालिए, क्योंकि इसके कुछ छींटे निश्चय ही आप पर भी पड़ेंगे।

मुरली मनोहर श्रीवास्तव

नई दिल्ली । बृहस्पतिवार । 15 मई 2014
अमर उजाला

हर निगाह खरीदार की तरह

नुक्कड़

बधाई हो! अब हम दुनिया के तीसरे बड़े खरीदार देश हैं। कभी हम अमीर देशों से मदद मांगते थे। आज हम दुनिया के उन मुल्कों में हैं, जो कुछ भी खरीद सकते हैं। आज किसी मल्टीनेशनल कंपनी को डायमंड कलेक्शन, स्मार्ट फोन या गाड़ी लांच करनी हो, तो वह हमें इग्नोर नहीं कर सकती। वह अपने किसी प्रोडक्ट को यह कहकर डेवलप नहीं कर सकती कि नॉट फॉर ब्लडी इंडियन्स। आज किसी इंटरनेशनल फूड चेन को अपना नया मीनू लाना हो, तो उसे उसका इंडियन स्पाइसी टेस्टी वर्जन भी लाना होगा। हां, उसे हमारी तरह की जनता का ध्यान रखते हुए महंगे प्रोडक्ट का अफोर्डेबल वर्जन हैपी मीनू के तहत लांच करना होगा।

हमारी पर्चेजिंग पावर बढ़ रही है और हम उनके लिए ग्राहक बनते जा रहे हैं। हमें लगता है कि हमने सामान खरीदा, पर सच यह है कि उन्होंने हमें खरीद लिया है। हमारी आदतें और सोच उनके कोल्ड ड्रिंक्स, उनके फास्ट फूड और उनकी गाड़ी की गुलाम हो गई हैं।

जिसे हम मान समझ रहे हैं, वह वास्तव में अपमान है। सच तो यह है कि हमारी कोई औकात बची ही नहीं है। जिसे देखिए, वह हमें खरीदार के नजरिये से देखता है। किसी शायर ने शायद हमारे इस हश्र के बारे में पहले से कह रखा है, *उठती है हर निगाह खरीदार की तरह*। चुनाव के समय नेता भी अपने मतदाता को इसी तरह देखते हैं-यह भीड़ जाएगी कहां, वायदे पर बिकेगी, दारू या गिफ्ट पर बिकेगी, सड़क, बिजली-पानी या विकास पर बिकेगी, और कुछ नहीं, तो मान-अपमान के इमोशनल सेंटिमेंट्स पर बिकेगी। जाति और धर्म पर तो न जाने कब से बिक रही है यह भीड़।

खरीदने वाले हमें पिज्जा और बर्गर से खरीद रहे हैं, रबड़ी और कुल्फी से खरीद रहे हैं, राशन और भाषण से खरीद रहे हैं। आजादी के पहले भी देखने वाले हमें खरीदार की तरह देखते थे और बाजारवाद के इस दौर में भी। वह दिन कब आएगा, जब देखने वाले हमें इन्सान की तरह देखेंगे! हमें संवेदनशील नागरिक बनना था, पर हम बाजार की ताकत बनकर खुश हैं।

मुरली मनोहर श्रीवास्तव

नई दिल्ली । बृहस्पतिवार । 15 मई 2014
अमर उजाला

हर निगाह खरीदार की तरह

नुक्कड़

बधाई हो! अब हम दुनिया के तीसरे बड़े खरीदार देश हैं। कभी हम अमीर देशों से मदद मांगते थे। आज हम दुनिया के उन मुल्कों में हैं, जो कुछ भी खरीद सकते हैं। आज किसी मल्टीनेशनल कंपनी को डायमंड कलेक्शन, स्मार्ट फोन या गाड़ी लांच करनी हो, तो वह हमें इग्नोर नहीं कर सकती। वह अपने किसी प्रोडक्ट को यह कहकर डेवलप नहीं कर सकती कि नॉट फॉर ब्लडी इंडियन्स। आज किसी इंटरनेशनल फूड चेन को अपना नया मीनू लाना हो, तो उसे उसका इंडियन स्पाइसी टेस्टी वर्जन भी लाना होगा। हां, उसे हमारी तरह की जनता का ध्यान रखते हुए महंगे प्रोडक्ट का अफोर्डेबल वर्जन हैपी मीनू के तहत लांच करना होगा।

हमारी पर्चेजिंग पावर बढ़ रही है और हम उनके लिए ग्राहक बनते जा रहे हैं। हमें लगता है कि हमने सामान खरीदा, पर सच यह है कि उन्होंने हमें खरीद लिया है। हमारी आदतें और सोच उनके कोल्ड ड्रिंक्स, उनके फास्ट फूड और उनकी गाड़ी की गुलाम हो गई हैं।

जिसे हम मान समझ रहे हैं, वह वास्तव में अपमान है। सच तो यह है कि हमारी कोई औकात बची ही नहीं है। जिसे देखिए, वह हमें खरीदार के नजरिये से देखता है। किसी शायर ने शायद हमारे इस हश्र के बारे में पहले से कह रखा है, *उठती है हर निगाह खरीदार की तरह।* चुनाव के समय नेता भी अपने मतदाता को इसी तरह देखते हैं-यह भीड़ जाएगी कहां, वायदे पर बिकेगी, दारू या गिफ्ट पर बिकेगी, सड़क, बिजली-पानी या विकास पर बिकेगी, और कुछ नहीं, तो मान-अपमान के इमोशनल सेंटिमेंट्स पर बिकेगी। जाति और धर्म पर तो न जाने कब से बिक रही है यह भीड़।

खरीदने वाले हमें पिज्जा और बर्गर से खरीद रहे हैं, रबड़ी और कुल्फी से खरीद रहे हैं, राशन और भाषण से खरीद रहे हैं। आजादी के पहले भी देखने वाले हमें खरीदार की तरह देखते थे और बाजारवाद के इस दौर में भी। वह दिन कब आएगा, जब देखने वाले हमें इन्सान की तरह देखेंगे! हमें संवेदनशील नागरिक बनना था, पर हम बाजार की ताकत बनकर खुश हैं।

मुरली मनोहर श्रीवास्तव

10 राष्ट्रीय सहारा

नई दिल्ली। मंगलवार • 13 मई • 2014

चलते-चलते/मुरली मनोहर श्रीवास्तव

शर्तें लागू की इबारत

इस जमाने में ब्रांडिंग के बिना कुछ संभव नहीं है। ब्रांडिग के लिए विज्ञापन चाहिए। विज्ञापन के लिए एड एजेंसी। एड ऐजेंसी अफोर्ड करने के लिए विज्ञापन बजट। अगर विज्ञापन बजट नहीं है तो इसका अर्थ हुआ कि आपके पास खर्च करने की औकात नहीं है। जब खर्च नहीं कर सकते तो बाजार में टहल क्यों रहे हैं। बिको या बेच दो, लुटो या लूट लो, मिटो या मिटा दो, करो या करने दो जैसी बातें बढ़ रही हैं। यानी अब जियो और जीने दो जैसे नारे अपील नहीं करते। जेब में नहीं दाने और अम्मा चली भुनाने जैसे मुहावरे कारगर हो रहे हैं। कहने वाले भले मंच पर जनता में जोश भरने के लिए कह रहे हों कि 'कौन कहता है आसमां में सुराख नहीं हो सकता, एक पत्थर तो तबीयत से उछालो यारो' पर पता उन्हें भी है कि आसमां में सुराख करने को वे न जाने कितने पत्थर उछाल चुके हैं और सुराख होंने की उम्मीद में सदियां काट चुके हैं।

आज विज्ञापन आपस में टकरा रहे हैं। जैसे हर वाशिंग पाउडर खुद को दूसरे से ज्यादा सफेदी लाने वाला बताता है। जैसे हर इन्वर्टर खुद को रोशनी देने वाला और बिजली बचाने वाला बताता है। सच कहूं तो पचास साल से छत की तलाश वाले को जब कोई रंगीन पम्फलेट दिखता है जिस पर लिखा हो आपका अपना घर आपके बजट में और नीचे ड्रीम डेस्टिनेशन के साथ ही बैंक लोन टाई अप और लो ईएमआई का दावा भी हो तो नाउम्मीदी पर जी रहे झुकी कमर के सहारे चल रहे आदमी में भी उम्मीद झलकने लगती है। वह प्री पेड मोबाइल से दो चार रुपये की काल दिये गये नम्बर पर कर ही डालता है कि क्या पता कही सपना सच हो ही जाये पर असली समस्या तब आती है जब हर उम्मीद के साथ एक छोटे से स्टार के साथ शर्ते लागू वाला क्लाज उसे समझाया जाता है। मसलन फ्लैट की कीमत सत्रह लाख ही है पर डाउन पेमेंट पर। पजेशन कब मिलेगा यह बस कागजों पर लिखा है अर्थात आज पूरे पैसे देकर हाथ में बिल्डर की चिट्ठी ले लो कि यह फ्लैट नम्बर टाप फ्लोर पर आपका है जबकि अभी ज़मीन का कही अता पता नहीं है।

लागू शर्तों का आलम कहां तक बताएं। यह लोन लेने से लेकर लोकतंत्र में आम जनता को सब कुछ मुहैया कराने तक सब पर लागू होता है। तभी तो घोषणा पत्र तो दशकों से छप रहे हैं पर वायदे ज्यों के त्यों अधूरे पड़े हैं। हम हैं कि अपने सपनों में इतना खोये हैं कि स्टार के साथ नीचे महीन अक्षरों में लिखी शर्ते लागू की इबारत आज तक नहीं पढ़ पाये।

नई दिल्ली । बुधवार । 2 अप्रैल 2014 अमर उजाला

कविता और कॉल सेंटर

तमाशा

फेसबुक और ब्लॉग के जमाने में ऐसा कोई नहीं बचा, जो अपने राइटर होने का दावा न ठोके। ऐसे में, कई बार कुछ आशुकवियों की अवमानना भी हो जाती है। कई बार ऐसा लगता है कि कविता लिखना किसी गुनाह से कम नहीं। कुछ लोग इसके लिए कवियों की थोक के भाव पैदा होती जमात को जिम्मेदार मानते हैं, तो कुछ लोग कविता के गिरे हुए स्टैंडर्ड को।

ताजा वाकया अपने एक मित्र के साथ हुआ। मंच पर कुछ कविताएं सुनाने के बाद उसे खुद के कवि होने का भ्रम पैदा हो गया। उसने अपनी कविता अखबार के दफ्तर में भेजकर उसके बारे में पूछताछ कर डाली। इस पर जो फटकार उसे मिली कि अब वह कविता लिखने की भूल नहीं करेगा। कविता लिखना कवि के लिए जीने-मरने के समान होता है। ऐसे में कोई उसे एहसास करा दे कि तू कवि नहीं, अपराधी है, तो उसे कितना बुरा लगता होगा।

हालांकि यहां वह इकलौता अपराधी नहीं है। सोशल साइट्स पर, ब्लॉग्स पर, गली-मुहल्ले में ऐसे अपराधी फैले हुए हैं। लेकिन वह बड़ा अपराधी इसलिए है कि उसने कविता लिखकर छपने को भेज दी, फिर संपादक महोदय से पूछने का अपराध भी कर दिया कि वह कब छपेगी। मेरे मित्र को तो गर्वित होना था कि उनकी कविता रिटर्न मेल से लौट नहीं आई। उसे तो साल-छह महीने अखबार के अपराध से लेकर खेल तक के पृष्ठ सब देखने थे। क्या पता, उसकी कविता संपादक के नाम पत्र में छप चुकी हो।

मेरे मित्र के कान में संपादक की डांट गूंज रही है, आपने कविता भेजी, अच्छा किया, बस पेपर देखते रहिए। हम कोई कॉल सेंटर नहीं चलाते कि आप हमें फोन कर उसके बारे में पूछताछ करें।

तब से मेरे मित्र शॉक में हैं। राइटर होने का भूत उन पर से उतर गया है।

मैं उन्हें दिलासा दे रहा हूं कि देखो, राइटर बनना है, तो अपना अपमान कराने की आदत डाल लो। और हां, तुम इमोशनल मुद्दे छोड़ कविता के लिए कॉल सेंटर और पिज्जा डिलीवरी जैसे हॉट टापिक चुनो।

मुरली मनोहर श्रीवास्तव

10 राष्ट्रीय सहारा

नई दिल्ली । मंगलवार • 1 अप्रैल • 2014

चलते-चलते/मुरली मनोहर श्रीवास्तव

वायदे की दुकान से मिक्स मिठाई

एक रिक्शे वाले को सवारी ढोते-ढोते अचानक बुढ़ापे में डामर वाली अच्छी सड़क पर रिक्शा चलाने का अवसर मिले तो समझो जीवन में विकास की अवधारणा पूर्ण हो गयी। किसी इलाके में लकड़ी बीन कर जीवन यापन करने वाले को यदि चुनी हुई लकड़ी बाजार में बेचने की सुविधा मिल जाए तो यह उसके जीवन में सामाजिक विकास की अवधारणा को दर्शाता है। रही किसी मध्यम वर्गीय व्यक्ति के विकास की अवधारणा तो वह एक फ्लैट में रहते हुए दूसरे की बुकिंग व एक बड़ी गाड़ी की ओनरशिप के साथ पूरी होती है। किसी क्रिकेटर से टेस्ट मैच खेलने को कहें तो उसे अपने पर कोफ्त महसूस होती है। चाहे वह कितना ही अच्छा रणजी खिलाड़ी क्यों न हो। और जब उसे आईपीएल का आफर मिलता है तो उसके भीतर स्वतः विकास के लक्षण नजर आने लगते हैं। वैसे ही किसी क्रिकेटर को जब तक सही विज्ञापन न मिले तब तक उसका रन बनाना या चमकना कोई मायने नहीं रखता। किसी सीरियल या फिल्म में जब तक ग्लैमर का तड़का न लगे किसी का विकास नहीं होता। खाली अच्छी ऐक्टिंग की तारीफ बेमानी है।

इसी प्रकार नेता अभिनेता सड़क पर फेरी लगाने वाले- सभी के लिए विकास की अवधारणा अलग-अलग है। कुछ ऐसा ही कांसेप्ट मिठाई का है। कुछ ऐसे हैं, जिनके घर इफरात मिठाई भरी रहती है और उन्हें खाने की इच्छा नहीं होती। कुछ को खाने की इच्छा तो होती है पर डॉक्टर ने परहेज बताया है। यह तो हुई खास की बात पर कामन आदमी के लिए मिठाई का कांसेप्ट बहुत अलग है। वह दो सौ रुपये किलो डालडा के लड्डू से ले कर बारह पंद्रह सौ रुपये किलो मेवे की बर्फी तक आंखो से हर रेट की मिठाई का स्वाद पी लेता है। फिर सोचता है क्या करे! वह मुंह में पानी लिये और इधर-उधर देख कर अंततः कहता है आधा किलो मिक्स तोल दो। इसके बाद वह इतने शान से घर के लिए निकलता है, मानो किला फतह कर लिया हो।

खैर, इस समय पार्टियों की वायदों की दुकान पर एक से एक मिठाईयां सजी हैं। ऐसी-ऐसी लाजवाब कि जिसे देखो, उसे देख कर मुंह में पानी आ जाये। आफत यह कि कोई भी एक मिठाई दिल भरने को काफी नहीं है। ऐसे में कॉमन मैन लार टपकाते हुए कहता है, भैया सौ ग्राम ईमानदारी, पचास ग्राम विकास, दो सौ ग्राम रोजगार और डेढ़ सौ ग्राम मंहगाई कम करने का वादा तोल दो। पूरी किलो भर वायदे की मिठाई अफोर्ड करने की अपनी ताकत नहीं है। क्या करें कामनमैन के विकास के स्वाद का कांसेप्ट एक लिमिट से ऊपर जाता ही नहीं है।

नई दिल्ली । शुक्रवार • 14 मार्च • 2014

कटाक्ष

इंपोर्टेड राइटर की वैल्यू

मुरली मनोहर श्रीवास्तव

अपने देश में जो वैल्यू फारेन रिटर्न की है, वह बड़े से बड़े देशी विद्वान की नहीं। भले ही मेड इन इंडिया अमेरिका में खूब चलता हो और इसकी ब्रांड वैल्यू मेड इन चाइना से ज्यादा हो पर हमें अपने प्रोडक्ट पर हमेशा,संदेह रहता है। मैं तो अपने तमाम जानने वालों को यहां तक कहते सुनता हूं कि अपने ही देश से जो सामान एक्सपोर्ट होता है, उसकी क्वालिटी लोकल डिपार्टमेंटल स्टोर में बिकने वाले सामान से कहीं बेहतर होती है। मसलन हल्दीराम की भुजिया जो हमारे लाला जी अपने देश में बेच रहे हैं और जो अमेरिका के किसी इंडियन स्टोर में मिल रही है, वह एक जैसी नहीं है। मैं सोचता हूं, क्या यहां और वहां वाली भुजिया में बेसन का फर्क होगा! कहीं ऐसा न हो कि हमें बेसन की जगह किसी और आइटम की भुजिया मिल रही हो या उन्हें बेसन से भी बेहतर जींस की भुजिया परोसी जा रही हो।

ऐसे ही मैं कुछ नये लोगों के सम्पर्क में आया जो खुद तो अमेरिका नही जा सके पर उनके बच्चों ने उनका सपना साकार करते हुए विदेश की फ्लाइट पकड़ ली। वे उनके द्वारा लाये गए कुछ प्रोडक्ट प्रयोग कर विदेशी सामानों की महिमा बताते नहीं अघाते। उन्हें संदेह रहता है कि जो मोबाइल वे अपने देश में खरीद रहे हैं, वह विदेश से लाये गये सेट से इंफीरियर है, भले ब्रांड वही हो या मेड इन चाइना दोनों पर लिखा हो। वैसे ही शॉपिंग माल से खरीदे गये किसी बड़े ब्रांड पर मेड इन अमेरिका लिख देने भर से वह वहां के ब्रांड की बराबरी नहीं कर सकता।

देखिए, राइटर पर बहस करते समय सामान का उदाहरण नहीं देना चाहिए था। यह सामान्य नैतिकता के विरुद्ध है पर क्या करूं, आजकल चिंतन बड़ा फेसबुकिया हो गया है। भले ही मैं सोशल साइट्स से चिढ़ता हूं। कारण, मुझे लगने लगा है कि आप टेक्नोलॉजी सेवी हों या न हों, उससे बच नहीं सकते। अर्थ यह कि भले आप किसी देशी गंभीर राइटर को न जानते हों पर यह नहीं हो सकता है कि लगातार चिरकुटिया कमेंट करने वाले ब्लॉगर से अपरिचित हों। बाद में भले ही वह विदेशी निकले।

वैसे विदेशी से अर्थ यह न लगा लें कि वह बॉर्न अमेरिकन आस्ट्रेलियन या यूरोपियन होगा। आजकल यलो कार्ड वाला भी खुद को विदेशी कहलाने में गर्वित होता है और अगर कोई स्टडी वीसा लेकर छह महीने भी बाहर रह आया तो खुद को फारेन रिटर्न ही कहता है। वह अपने विदेश के सौ पचास दिनों के अनुभव सालों-साल बताता रहता है, भले ही उसे अपने शहर की गली मोहल्ले में बिताये अपने पचीस साल के दो दिन भी याद न हों। और हम हैं कि उसे बड़ी हसरत से देखते हैं कि यार अगले का जीवन धन्य हो गया जो विदेश देख आया। एक हम हैं कि आज तक देश के समंदर भी नहीं देख पाये।

देखिए, इतना लिखने का मतलब सिर्फ अपनी सोच की तह तक पहुंचने का प्रयास था क्योंकि अब हम उस मोड़ पर आ गये हैं, जहां राइटर पर बहस कर सकें। इस देश में जब कोई राइटर विदेश से बेस्ट सेलर बन कर लौटता है तो वह हाथों-हाथ छा जाता है जबकि अपने देश में बीस पचीस सालों से हिन्दी अखबारों में कलम घिस्सू राइटर बस पब्लिशर के चक्कर भर काटता रह जाता है। यह स्थिति बताती है कि देखो, अखबार में छपने और अपनी किताब को बेच कर बेस्ट सेलर बनने में बहुत फर्क है। वह कहता है, आप देख लीजिए, उसका कंटेंट और हमारे लेखन की गहराई में कितना फर्क है और प्रकाशक बताता है कि कंटेंट उतना इंपोर्टेंट नहीं होता, जितना किसी किताब के बिकने के लिए उसका कंट्रोवर्शियल होना या राइटर का पॉपुलर होना। वह कहता है, हमारे देश में किताबें खरीदता कौन है! लोग ढाई सौ रुपये की मूवी देख लेते हैं पर पचास रुपये की किताब खरीदने में उन्हें कष्ट होता है। यह कहता है कि यह तुम्हारी प्राब्लम है। देखो, अंग्रेजी से अनुवाद की हुई किताबें कितनी बिकती हैं! वह सर पकड़ लेता है।

बिकने और अच्छे होने में फर्क है। हम अच्छे होकर भी नहीं बिकते, ठीक आर्ट फिल्म की तरह। जबकि बिना सिर पैर की कमर्शियल फिल्मों का कलेक्शन देख लीजिए। दोस्त, बाजार अच्छे होने से नहीं, बिकने से चलता है और जब तक बिकने का जुगाड़ नहीं कर सकते, कितना भी अच्छा लिखो, उसका कोई मतलब नहीं है। जब खरीदार ही नहीं हैं तो बड़ी-बड़ी बातों का मतलब क्या है! खैर बहस जारी है कि क्या देसी राइटर्स को भी हिन्दी फिल्मों की तरह विदेशी मैनिरज्म की कॉपी शुरू कर देनी चाहिए या ओरिजिनल वर्सन और नीतियों पर कायम रहते हुए आशावादी सोच के साथ अच्छे दिनों की उम्मीद पाले रखनी चाहिए।

अमर उजाला

नई दिल्ली | सोमवार | 3 मार्च 2014

भाई, तू डिमांड में है

नुक्कड़

कहते हैं कि कभी घूरे के दिन भी फिरते हैं। सो कोई आश्चर्य नहीं कि आजकल हमारे दिन बहुर रहे हैं। सत्तर के दशक की सड़क छाप पैंट-शर्ट, जो हीरो के हिट होने की गारंटी थी, 21वीं सदी में फिर डिमांड में है। पुराने जमाने का हीरो जब सड़क से उठकर बंगला खड़ा करता और मां-बाप पर अत्याचार करने वालों से चुन-चुनकर बदला लेता, तब हॉल में बैठी पब्लिक इमोशनल होकर ताली बजाने लगती थी। उस जमाने में हीरो के घुटने पर फटी जींस फैशन आइकॉन बन गई थी। आज वही ट्रेंड लौट आया है।

आज जिसे भी आगे बढ़ने की जरूरत नजर आती है, वह अपनी कीमती घड़ी, महंगी ड्रेस और ब्रांडेड जूता उतार कर जनपथ पर सस्ती पैंट-शर्ट और मफलर ढूंढता नजर आता है। फुटपाथ पर सोने वाला, सड़क किनारे रेहड़ी लगाने वाला और गोलगप्पे बेचने वाला आज डिमांड में है। ऑफिस के बाबू-सा दिखने की हसरत आज हर बड़ा आदमी पाल रहा है। किसी जमाने में सिक्यूरिटी लेकर चलना आन-बान और शान की निशानी था, आज यह पर्सनेलिटी पर बोझ नजर आता है। पहले बिना जान-पहचान और जुगाड़ के बड़े आदमी से मिल ही नहीं सकते थे। अब बड़े लोग व्यस्तता का चोला उतार खुद भीड़ से घुलने-मिलने को बेताब नजर आते हैं। मैनेजमेंट वालों के कांसेप्ट बदल रहे हैं और वे महानता बनाम साधारणता का चैप्टर खास तौर से सिलेबस में जोड़ रहे हैं। *लगान* और *चक दे* के साथ जंतर-मंतर आंदोलन की सफलता की कहानी भी मैनेजमेंट स्टूडेंट्स को दिखाई जाने लगी है।

अब मैं गली-मुहल्ले-नुक्कड़ पर ठलुआ खड़े लोगों से कहना चाहता हूं कि अपनी इनर्जी और विचारों की दौलत यों ही जाया मत करो। तुम डिमांड में हो। तुम्हें क्या पता कि तुम्हारे रहन-सहन और चाल-ढाल की क्लिपिंग यू-ट्यूब पर किस कदर हिट हो रही है।

बड़े लोगों के चमचे तुम्हारे कपड़ों का नमूना लेकर चांदनी चौक की गलियों की खाक छान रहे हैं। कई तो कांटा-चम्मच छोड़कर यह सीख रहे हैं कि हाथ में दोना लेकर कैसे खाते हैं। कई उस सीन की नकल कर रहे हैं, जिसमें एक भूखा आदमी बिना पानी का घूंट पिए मिनटों में पूड़ी-सब्जी निगल जाता है। मुझे वह सीन बड़ा मारक लगता है, जिसमें कोई अनुभवहीन प्राणी इसे कॉपी करने के चक्कर में कौर गले में फंसाकर खांसने लगता है और उसकी लाल-लाल आंखें बाहर निकल आती हैं।

कुछ भी हो, आज सिंपल दिखना डिमांड में है।

मुरली मनोहर श्रीवास्तव

10 राष्ट्रीय सहारा

नई दिल्ली। मंगलवार • 18 फरवरी • 2014

चलते-चलते/मुरली मनोहर श्रीवास्तव

सपनों की प्रयोगशाला

मैंने सपने देखने शुरू कर दिये हैं। सुना है, हमारी समस्याओं के समाधान सपनों की प्रयोगशाला में तैयार हो रहे हैं। रोज टीवी पर घंटो बहस देखता हूं और अच्छी नींद आ जाती है। लगता है, इतने बड़े बौद्धिक चिंतन और जागरूक लोकतांत्रिक देश में जन-तंत्र कब तक घर के बाहर दस्तक देता रहेगा। एक बहस में मुझे भी हिस्सा लेने का मौका मिला। बहस थी 'खबर' पर। मेरे भीतर खबर को लेकर रूमानियत का अहसास जगने लगा। जैसे कोई शेर कह रहा हो कि *कल चौदहवी की रात थी, शब भर रहा चर्चा तेरा, कुछ ने कहा ये चांद है, कुछ ने कहा चेहरा तेरा। हम चुप रहे। हम हंस दिये मंजूर था परदा तेरा।*

मीडिया में चल रही तंत्र के ऊपर जन के हावी होने की खबर अर्थात गांधी के सपने के हकीकत में बदल जाने की कल्पना रूमानियत नहीं तो और क्या है! ऐसे में चुप रह कर हंसना और पर्दे के बने रहने देने में ही मुझे समझदारी नजर आती है। खैर खबर कुछ और होती है। मैंने भ्रम तोड़ने के लिए एक शेर कहा- *बहस में हमने इंसान के दुःख दर्द का हल ढूढ़ लिया, क्या बुरा है जो ये अफवाह उड़ा दी जाये।* अर्थात मेरे दोस्त इंसान के दुःख दर्द का हल को ढूंढ लेने की बात अफवाह तो हो सकती है, पर खबर नहीं। अब अगर मैं लिखूं कि हम सब बड़े और महत्वाकांक्षी लोगों की सपनों की प्रयोगशाला के कच्चे माल (अर्थात सामान) की तरह हैं तो गलत क्या है? वह जो तंत्र है, प्रयोगशाला का उपकरण है और हमारे इमोशंस, भावनाएं सपनों की प्रयोगशाला के केमिकल। इस देश की सपनों की प्रयोगशाला में जाने कितने प्रयोग हमारे ऊपर होते हैं और इसके लिए कभी किसी इमोशन का केमिकल प्रयोग होता है, कभी किसी इमोशन का और हम हर बार नया प्रोडक्ट बन कर सामने आते हैं। लोकतंत्र में हम जन नहीं, प्रोडक्ट बन चुके हैं, जो नहीं बनें हैं, वे ढाले जा रहे हैं। लोकतांत्रिक सपनों की प्रयोगशाला में हम आशावादी बनें या निराशावादी, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता क्योंकि वक्त बीतने के साथ उम्र हमें अपनी सोच के निरर्थक साबित होने का प्रमाण दे देती है। कारण, प्रोडक्ट की सोच का कोई अर्थ नहीं होता। प्रोडक्ट बस बिकने के लिए होता है। प्रयोगशाला में बने किसी हिट प्रोडक्ट के फार्मूले से जन को प्रोडक्ट बना उसे सड़क पर बेच देने का हुनर महानता की गारंटी है और जब तक हमें अहसास होता है कि हम किस तरह का प्रोडक्ट बन कर बिके हैं, सौदागर ज्ञान बांटने लगता है। सपनों की प्रयोगशाला में तैयार प्रोडक्ट आम जिंदगी के हल नही निकालते और वे जो सपनों की प्रयोगशाला से उम्मीद पाले बैठे रहते हैं, फिर निराश हो किसी चमत्कार की आस में डूब जाते हैं। तभी तो गालिब ने लिखा है- *खुदा के वास्ते पर्दा नकाबे से उठा जालिम, कहीं ऐसा न हो यह भी वही काफिर सनम निकले।*

राष्ट्रीय सहारा
सच कहने की हिम्मत
वर्ष-23, अंक 8177

अमर उजाला

नई दिल्ली | बुधवार | 22 जनवरी 2014

किस-किसका विकल्प ढूंढेंगे

तमाशा

कल पेट्रोल पंप पर पहुंचा, तो देखा, मेहरा जी डीलर से झगड़ रहे हैं, अच्छी लूट मचा रखी है तुमने। कल उन्यासी छब्बीस था, आज उन्यासी छिहत्तर कैसे हो गया?

डीलर कह रहा है, पेट्रोल के रेट हमारे हाथ में नहीं हैं। कंपनी जो बताती है, उसी पर बेचना है।

लेकिन आज अचानक रेट पचास पैसे बढ़ कैसे गए?

सर, पचास पैसे का सिक्का मिलता कहां है? ऐसे में लीटर में पचास पैसे बढ़ भी गए, तो क्या फर्क पड़ता है!

मेहरा जी बोले, बात पचास पैसे की नहीं, लूट की है। एक तो तुम्हारा मीटर हर लीटर में पचास ग्राम पेट्रोल पी लेता है, बाकी बीस-पच्चीस ग्राम मिलावट के नाम जाता है। सौ-दो सौ ग्राम पेट्रोल तो जाम को समर्पित है। मुझे तो एक लीटर में सात सौ ग्राम पेट्रोल ही मिलता है। आज तो मुझसे कल वाला ही रेट ले लो।

वह बोला, आपसे कम लूंगा, तो पीछे पचास लोग खड़े हैं। कंपनी वालों को पता चलेगा, तो लाइसेंस कैंसिल हो जाएगा। आगे आपकी मर्जी, पेट्रोल लो, न लो।

मेहरा जी बोले, पेट्रोल तो मैं ले चुका हूं।

तो कुछ नहीं हो सकता। पेमेंट तो नए रेट पर ही करनी पड़ेगी।

मेहरा जी बोले, तुम टंकी से एक रुपये का पेट्रोल निकाल लो। सुबह-सुबह स्कूटर की टंकी से पेट्रोल कैसे निकलेगा? एक रुपये का पेट्रोल मैं नापूंगा कैसे? निकाल भी लिया, तो उसे रखूंगा कहां?

यार, नाराज क्यों होते हो। मैं तो कल के रेट से घर के सारे छुट्टे इकट्ठा कर दो लीटर पेट्रोल लेने आया था। लेने के बाद देखा, तो एक रुपया कम पड़ गया। तब पता लगा कि रेट बढ़ा है। पेट्रोल तुम निकाल नहीं सकते, रेट कम करोगे नहीं और एक रुपया मेरे पास है नहीं। मैं क्या करूं?

पेट्रोल पंप वाला बोला, एक रुपये फिर कभी दे दीजिएगा।

मेहरा जी बोले, हमारी भी कोई इज्जत है। ऐसा नहीं होगा।

मुझसे रहा नहीं गया। मुस्कराते हुए मैंने कहा, मेहरा जी, आप यह सोच लो कि एक सौ अट्ठावन की खरीद पर एक रुपये का पेट्रोल मुफ्त मिला आपको, सब्जी की खरीद में मिर्च की तरह।

मेहरा जी स्कूटर स्टार्ट करते हुए बोले, थैंक्यू दोस्त, पर लगता है कि पेट्रोल का विकल्प ढूंढना पड़ेगा।

मैं कहना चाहता था कि मेहरा जी, अनाज, चीनी, सब्जी-आप किस-किसका विकल्प ढूंढोगे?

मुरली मनोहर श्रीवास्तव

अमर उजाला

नई दिल्ली | मंगलवार | 12 नवंबर 2013

पर उपदेश कुशल बहुतेरे

नुक्कड़

इस देश में सबसे आसान काम है, उपदेश देना। मैंने जबसे होश संभाला है, बस उपदेश ही सुन रहा हूं। बचपन में घरवालों के उपदेश सुनता रहा। फिर टीचर और प्रिंसिपल के उपदेशों से पाला पड़ा। कुछ बड़ा हुआ, तो पिताजी के साथ प्रवचन सुनने जाना पड़ता था। फिर नौकरी में आया, तो बॉस से उपदेश सुनने की आदत सी पड़ गई है। अब बच्चे उपदेश देते हैं। हाईटेक जमाने में मैं खुद को बहुत पिछड़ा हुआ पाता हूं। इस उपदेश के कारोबार में न जाने मुझे हर उपदेश देने वाले पर संशय बना रहा। एक गांधी जी के अलावा मुझे कोई ऐसा नजर नहीं आया जिसने उपदेश देने से पहले उसे अपने ऊपर लागू किया हो।

मेरा मानना है कि उपदेश जैसी चीज बस देने के लिए ही होती है। सच बोलो, धैर्य रखो, *संतोषम परम् सुखम्*, सादा जीवन उच्च विचार, पेट्रोल बचाओ, सोने का मोह छोड़ो, नैतिक बनो, भौतिकता में कुछ नहीं रखा है, जैसे वचन कहन-सुनने में अति उत्तम हैं। ईमानदार बनो, देशभक्त बनो, चोरी मत करो जैसे वाक्य किसी उच्च आसन पर बैठकर प्रभावशाली मुद्रा में कहने से सुनने वालों पर सम्मोहक प्रभाव पड़ता है। ऐसे में सुनने वाले को लगता है कि कहने वाला जरूर पहुंचा हुआ संत आदमी है। यह देश सच पूछिये, तो उपदेशकों के बल पर ही टिका हुआ है। हमारे देश की आबादी बड़ी उत्सव प्रेमी है। हम अपने जीवन में तनाव बर्दाश्त ही नहीं कर सकते। उपदेश इस देश में सबसे सस्ता सुंदर और टिकाऊ उत्सव प्रदान करता है। यहां आने और सुनने का टिकट नहीं लगता, बल्कि उपदेश सुनने वालों के लिए जलपान का प्रबंध होता है। यदि कार्यक्रम पूरे दिन का हुआ, तो दोपहर के भोजन की भी व्यवस्था होती है। जहां उत्सव होगा, वहां बाजार पनपते देर नहीं लगती और बाजार पनपते ही व्यापार चल पड़ता है। सो उपदेश बड़े काम की चीज है यहां। उपदेश देने वाला भीड़ से आनंदित है और भीड़ उपदेश की आदर्श बातों से। आनंद का प्रवाह उपदेश देने और लेने में प्रवाहित हो रहा है। ऐसे में उपदेश को आचरण में लाने की फिक्र न उपदेशक को है और न ही साधक को। रही भीड़ तंत्र की बात, तो वह अपने आप जहां एकत्र होती है, ताकत बन जाती है। भीड़ लगते ही मीडिया और नेता पहुंच जाते हैं। इसलिए लोकतंत्र में ताकत भीड़ की है और पर उपदेश भीड़ जुटाने का सर्वाधिक सुलभ साधन। सो भैया इस देश में पर उपदेश कुशल बहुतेरे का कारोबार चकाचक लाभ का काम है।

मुरली मनोहर श्रीवास्तव

कटाक्ष

दुखी रहने का नैतिक अधिकार

मुरली मनोहर श्रीवास्तव

विश्वास मानिए, हमे अपने देश मे दुखी रहने का नैतिक अधिकार मिला हुआ है। अब आपको क्या बताएं कि यहां लोग किस-किस तरह से और कितने दुखी हैं। कोई अपनों से दुखी है तो कोई परायों से। कुछ दूसरों के कारण दुखी हैं तो कुछ अपने ही कारण। कुछ सब कुछ पाकर दुखी हैं तो कुछ सब कुछ खोकर। कुछ इसलिए कि कुछ नहीं मिला और कुछ इसलिए कि जो चाहते थे, वह नहीं मिला। इतना ही नहीं, जिसे वह मिला जो न मिलने वाले की शिकायत है। वह भी दुखी है कि उसे वह चाहिये ही नहीं था जो मिल गया है।

सीधा सा अर्थ यह है कि मिलने वाले की अपनी शिकायत है और जिसे नहीं मिला, उसकी तो बात ही क्या? मिर्जा गालिब तो यहां तक लिख गये कि *कैदे हयात और बन्दे गम अस्ल में दोनों एक हैं/मौत से पहले आदमी गम से निजात पाये क्यों।* अर्थ यह कि जिन्दगी की कैद और आदमी का गम असल में एक ही बात है और इस तरह मौत से पहले किसी आदमी को गम से मुक्ति मिल ही नहीं सकती। इतने बड़े शायर को चुनौती नहीं दी जा सकती अतः इसका अर्थ यह हुआ कि जीवन का स्थायी भाव है दर्द।

आप शब्दों के हेर-फेर से कन्फ्यूज मत होइएगा क्योंकि दुख-दर्द एक साथ प्रयोग होता है। अब दुख और दर्द को अलग करके या साथ रखकर आप अपनी सुविधा के अनुसार अर्थ निकालते रहिए। जन्म से लेकर मृत्यु तक जीवन में दर्द ही दर्द है, सो हमें दुखी रहने का नैतिक अधिकार विरासत में मिला हुआ है। एक और बेहतरीन शेर है- *हमने इन्सान के दुख दर्द का हल ढूंढ लिया/क्या बुरा है जो ये अफवाह उड़ा दी जाए।*

सच मानिए, दुखी रहने के इसी नैतिक अधिकार पर न जाने कितने कारोबार टिके हुए हैं। नतीजा यह कि कभी कोई तो कभी कोई हमारे दुख-दर्द दूर करने का दावा करता है। कभी सिनेमा की दुनिया में हमारे दुख-दर्द दूर होते हैं तो कभी मन्दिर और कभी गीत-संगीत की महफिल में। न जाने कितने ठिकाने बने हुए हैं दुख दर्द मिटाने के। हम भी अपनी सुविधा के अनुसार दुख-दर्द मिटाने के बहाने और ठिकाने ढूढ़ते रहते हैं।

हर गली-चौराहे पर हमारे ही दुखों की मार्केटिंग करते लोग नजर आ जाएंगे। ऐसी ही अनोखी दुनिया में कुछ अजीब से लोग भी मिलते हैं जो कहते हैं कि दर्द का हद से गुजरना है दवा बन जाना। वे कहते हैं कि *दर्द से मेरा दामन भर दे या मौला या मुझको दीवाना कर दे या मौला।* अर्थात अब हमने दर्द में ही आनंद उठाने का खेल खेलना शुरू कर दिया है, इसलिए अब मुझे दर्द की सौगात देते रहो।

इसके कई फेस हैं। हम अपने किसी दर्द की दूसरे दर्द से तुलना कर के कम्पेरिजन जोन में जाकर दर्द का लुत्फ उठाने लगते हैं या फिर दूसरों के दर्द से अपने दर्द की तुलना कर हलके हो लेते हैं। इसमें कोई शक नहीं कि दुखी रहने का नैतिक अधिकार हमें मिला है, कभी रोटी के निवाले के लिए तो कभी मिली हुई रोटी के चुपड़ी (घी लगी न होने पर) न होने पर। कभी सड़क पर पैदल घिसट-घिसट कर जिन्दगी काटने पर तो कभी साइकिल है तो स्कूटर के न होने पर। कार है तो उसके खटारा होने पर। घर-मकान नहीं है तो आसमान के नीचे रहने पर और है तो उसके छोटे होने पर।

इस तरह इस जमाने में न जाने कितने कारण हैं जो हमें दुखी रहने का नैतिक अधिकार प्रदान किये हुए हैं। इसके आगे एक शेर है जो कहता है- *बेहतर तो है जहान में न दुनिया से दिल लगे, पर क्या करें जो काम न दिल लगे चले।* सो इस दुखी रहने के नैतिक अधिकार में ही जीने के सारे साधन मौजूद हैं और हम इन दुखों को सीने में दबा कर हर समय उत्सव प्रेमी बने रहते हैं।

हम कभी जन्मोत्सव मनाते हैं तो कभी किसी सफलता पर खुश हो लेते हैं। कभी किसी त्योहार की बधाई बांटते हैं तो कभी अपनी किसी उपलब्धि का जश्न मनाते हैं।

यह सच है कि दुखी रहने के हमारे नैतिक अधिकार हमसे कोई छीन नहीं सकता पर दुख के स्थायी भाव पर कठिन परिस्थितियों में जीने की इन्सानी जिजीविषा ही तो हर हाल में हमें जिन्दा रखती है और इसीलिए शब्द कोश में हंसी और प्रसन्नता जैसे शब्द भी विद्यमान हैं।

अमर उजाला

नई दिल्ली | बुधवार | 25 सितंबर 2013

गुरु गूगल दोऊ खड़े

तमाशा

आज के जमाने में गुरु का हाल देखकर दिल दहल उठता है। तुलसीदास ने लिखा है, *मातु पिता अरू गुरु की बानी बिनहि विचार करिय शुभ जानी।* पर लगता है, इस चौपाई से गुरु को बाहर निकालने का समय आ गया है। आज गुरु अपनी गुरुता खो चुके हैं। फिर आज गुरु के भी न जाने कितने विकल्प आ गए हैं। गूगल को ही देख लीजिए।

आज आदमी गुरु के पास क्यों जाए? सवाल यह भी कि पहले आदमी गुरु के पास क्यों जाता था। पहले के युग में आगे बढ़ने का रास्ता गुरु ही दिखाता था। लेकिन जैसे-जैसे जीवन में शिक्षा कमाई के उद्देश्य से जुड़ती चली गई, वैसे-वैसे गुरु-शिष्य परंपरा क्षीण होती चली गई। जो गुरु जितना बड़ा पैसे बनाने का खेल सिखा सके, वह उतना ही सफल बन गया। यह गुरु खेल के क्षेत्र का हो सकता है, अध्यात्म, मेडिकल या इंजीनियरिंग के क्षेत्र का भी। गुरु को जब व्यवसाय ही करना है, तो काहे का संकोच और काहे का मान-सम्मान। आज गुरु दक्षिणा भी एकलव्य के अंगूठे से आगे बढ़ चुकी है। कौन-सा गुरु अपने दिए हुए ज्ञान और आशीर्वाद के बदले क्या मांग ले, नहीं कह सकते। आज गुरु शिष्या से फेसबुक आईडी से लेकर मोबाइल नंबर तक मांगते नजर आते हैं। ऐसे ही शिष्य भी गुरु के चरण स्पर्श जैसी फार्मेलटी से कोसों दूर हैं। मैंने तुम्हें फीस दी, तुमने बदले में पढ़ाया, ऐसे में कैसा एहसान और कैसा मान-सम्मान! यह तो सीधे-सीधे गिव ऐंड टेक का मामला है।

दूसरी बात यह कि जो काम कभी गुरु करता था, आज वह काम गूगल उससे बेहतर कर रहा है। आज गुरु नहीं, गूगल ज्ञान की खान है। जिन सवालों के जवाब बड़े-बड़े प्रोफेसरों के पास नहीं हैं, उनके जवाब गूगल में उपलब्ध हैं। वह भी बिना गुरु दक्षिणा के। गूगल किसी को नखरे नहीं दिखाता और अपने हर विद्यार्थी को सम भाव से देखता है। उसके पास अर्जुन और एकलव्य वाला भेदभाव नहीं है। आज के कबीर के शब्दों में कहें, तो *सात समंद की मसि करौं, लेखनी सब बनराई, धरती सब कागद करौं, गूगल गुन लिखा न जाय।* आज यदि गूगल और गुरु खड़े रहें, तो छात्र गूगल के आगे ही नतमस्तक होगा।

नोट- इसे पढ़ने के बाद गुरु प्रकृति के लोग हतोत्साहित न हों, क्योंकि आज भी करोड़ों लोग ऐसे हैं, जो परिश्रम छोड़ चमत्कार की आस में गुरु की शरण में जाते हैं। ऐसे देश में गुरुओं का धंधा चलते रहने में कोई संदेह नहीं है।

मुरली मनोहर श्रीवास्तव

अमर उजाला

नई दिल्ली | बुधवार | 4 सितंबर 2013

प्याज, सोना और रुपया

तमाशा

विशेषज्ञ बता रहे हैं कि प्याज में तेजी आवक घटने के कारण नहीं, आपूर्ति अनियमित होने के कारण आई है। अब खरबूजा चाकू पर गिरे या चाकू खरबूजे पर, कटेगा तो खरबूजा ही। ऐसे ही किसी दर्द भरे लम्हे में मैंने एक खूबसूरत प्याज को निहारते हुए कहा, तू आम आदमी को क्यों रुला रहा है? लोग कहते थे, अपन तो नमक-प्याज से रोटी खाने वाले आदमी हैं। आज बड़े-बड़े होटल वाले सलाद में प्याज गायब कर रहे हैं। तू आम आदमी के निवाले से दूर हो गया है और तुझे भी राशन कार्ड पर खरीदने की नौबत आ गई है। मुझे बस इतना बता दे कि किसान तेरी फसल के सहारे अपने कर्ज से तो मुक्त हो गए हैं न।

इठलाता हुआ प्याज बोल पड़ा, क्या बताएं! मेरा बस चले, तो मैं मंडी में ही न उतरूं। पर क्या करूं? इस देश में न किसान के चाहने से कुछ होता है, न उपभोक्ता के। जहां से मैं चलता हूं, वहां के लोगों को भी मैं राजा नहीं बना पाता, और जहां पहुंचता हूं, वहां भी कम रेट में आम लोगों की थाली में नहीं पहुंच पाता।

लेकिन इससे पहले कि मैं और इमोशनल होता, सोना बीच में कूद पड़ा। देखिए, आप प्याज से प्यार जता रहे हैं और मुझे भूल रहे हैं। मैंने उसे कम्युनिस्ट नजरिये से देखते हुए कहा, सुन स्वार्थी, तू ही असली गुनाहगार है देश की अर्थव्यवस्था को ध्वस्त करने का। अगर तू इतना न उछलता, तो देश की हालत इतनी पतली न होती। तू खुद तो चमक रहा है, पर लोगों के चेहरे की चमक उड़ा रहा है। सोना बोला, इसमें मेरी क्या गलती है। जरा रुपये की हालत देखो। जब-जब वह गिरता है, मुझे उठना पड़ता है। तुम क्या जानो कि मुझ पर कितना दबाव है। जिसे देखो, वही मुझे दबाए बैठा है।

अचानक मुझे रुपये पर बेहद गुस्सा आया। मैंने पूछा, क्यों भाई, तुम क्यों इतनी तेजी से नीचे जा रहे हो? वह रुआंसा होकर बोला, मैं कितने महीनों से सारा दबाव खुद पर झेलकर चुपचाप सहता रहता हूं। जब निर्यात न होने के बावजूद दनादन आयात करोगे, तो मेरी हालत तो पतली होनी ही है। डॉलर मेरे साथ मिलकर रहते हैं, तो मेरी भी मौज रहती है। पर डॉलर अंकल के निकल जाने के बाद मुझे पूछता कौन है!

रुपये की बात भी ठीक है। पर यह क्या कि जिसे देखो, वही अपना दुखड़ा सुनाए जा रहा है। मुझे समझते देर न लगी कि इस चक्रव्यूह में मैं चकरघिन्नी की तरह फंसा रह जाऊंगा। सो इन सबको छोड़ मैं अपने रास्ते निकल पड़ा।

मुरली मनोहर श्रीवास्तव

यूएसए टुडे

अमर उजाला

नई दिल्ली | सोमवार | 10 दिसंबर 2012

हम ओलंपिक नहीं, कुछ और खेलते हैं

तमाशा

लो, अब ओलंपिक से भी हमारा पत्ता कट गया। इस साल देश को सबसे ज्यादा पदक मिले और इसी साल यह हाल हो गया। भला यह भी कोई बात हुई? पर क्या करें, इसमें हमारा तो कोई दोष नहीं। दरअसल ओलंपिक वाले ही नासमझ हैं। उन्हें क्या पता कि हमारे देश में कौन-कौन से खेल खेले जाते हैं। वैसे भी जिस देश का क्रिकेट कप्तान मैच से पहले टर्निंग ट्रैक की मांग करता है, उस देश के खेल को दुनिया समझ भी कैसे सकती है! पर दुख यह है कि ओलंपिक वाले असली खेल समझना ही नहीं चाहते। वे तो यह भी नहीं जानते कि खेल में सबसे महत्वपूर्ण चीज क्या होती है। जो लोग मेडल को ही खेल की उपलब्धि मान लेते हैं, वे असल में बड़े ही नादान किस्म के लोग हैं।

दरअसल खेल शुरू होता है चुनाव, बयान, लॉबिंग और पार्टी से। खेल का असली मकसद तो कमाई और टूरिज्म है। भला वह भी कोई खेल है, जिसमें लाखों-करोड़ों के वारे-न्यारे न हों? खेल में खेल भावना का क्या काम! जिस खेल में अपनी मरजी के खिलाड़ी न चुने जा सकें, जिस खेल में मनमाफिक पिच न हो, वह भी कोई खेल है। भाई साहब, खिलाड़ी तो वही है, जो जिला स्तर से जुगाड़ एक्सपर्ट हो। हमारा राष्ट्रीय खेल तू-तू-मैं-मैं ओलंपिक में है ही नहीं। न ही ओलंपिक में बयान-बयान खेला जाता है। वहां फिक्सिंग-फिक्सिंग भी नहीं चलता। खाली रेस्लिंग, हॉकी, वेट लिफ्टिंग या ट्रैक ऐंड फील्ड प्रतियोगिताओं से क्या होगा? जरा यह तो देखिए कि इस देश में हैं ही कितने, जो खेलना- कूदना पसंद करते हैं। हां, मां-बाप के लाख मना कराने के बाद भी कुछ नालायक बच्चे खिलाड़ी बन ही जाते हैं, और न चाहते हुए भी मेडल ले आते हैं। वे जब सीधे सिखाने से नहीं मानते, तब उन्हें सही राह दिखाने के लिए ही ऐसे कदम सोच-समझ कर उठाए जाते हैं। अब मां- बाप को बड़ा आराम हो गया है। वे अब मजे से बच्चों को पढ़ने के लिए यह कहकर डांट सकते हैं, कि क्या करेगा खेल-कूदकर, कौन-सा ओलंपिक में जाना है! खेलना है, तो जा पॉलिटिक्स-पॉलिटिक्स खेल, जिसमें कुछ भला है। जा फिक्सिंग सीखकर आ, जिससे आईपीएल खेल सके। जा बेटा, थोड़ा फेंकना सीख, जिससे दो रोटी कमाने का जुगाड़ बन सके।

मेरे दोस्त, इस देश के असली खेल कुछ और हैं, जो बड़े लोग खेलते हैं। ओलंपिक-वोलंपिक इस देश के लायक नहीं है। हाथ आजमाना है, तो असली खेल में आजमाओ।

मुरली मनोहर श्रीवास्तव

अमर उजाला

इलाहाबाद | बृहस्पतिवार | 7 जून 2012

महंगाई कहां, यह तो विकास की कीमत है

तमाशा

मैं पिछले दिनों ऑफिस में पेट्रोल के दाम बढ़ने पर मातम मना रहा था कि देखा, एक नया लड़का गाड़ी खरीदने के लिए लोन के जुगाड़ में लगा है। मैंने उससे कहा, दोस्त, आज तो कम से कम मौन व्रत रख लो पेट्रोल के दाम बढ़ने के विरोध में। उसने मेरी तरफ देखा और मुंह बिचका कर बोला, अंकल, आपकी सोच पुरानी हो गई है। पेट्रोल महंगा नहीं हुआ है। मुझे झटका लगा। अरे भाई, पूरे देश में पेट्रोल बम को लेकर हाहाकार मचा है। और तुम कह रहे हो पेट्रोल के दाम ही नहीं बढ़े। कुछ खबर भी है कि इसके बाद महंगाई कितनी ऊपर जाएगी?

वह हंसा, अंकल, महंगाई-वहंगाई कुछ नहीं होती। यह सब मन का वहम है।

मुझे लगा कि हो न हो, यह आईपीएल या राजनीति के कारोबार से जुड़ा है। तभी इसे दाल-रोटी का भाव नहीं पता। मैंने कहा, जब घर-गृहस्थी के चक्कर में पड़ोगे, तब पता चलेगा।

उसने कहा, अंकल, पेट्रोल के दाम रोज बढ़ते हैं, तो क्या गाड़ियों की सेल कम हुई? या फिर एसी, मोबाइल, फ्रिज की रोज नई शॉप खुलने के बाद भी मार्केट में भीड़ रुकी? सर, देश तरक्की कर रहा है। लोगों की पर्चेजिंग पावर बढ़ रही है। पैदल वाला बाइक पर आ गया है। साइकिल वाले ने नैनो ले ली है। शॉपिंग मॉल में पैर रखने की जगह नहीं है। देश 4 जी की तरफ जा रहा है। और आप हैं कि बैलगाड़ी का चिंतन कर रहे हैं!

सर, विकास की कीमत होती है, इसे महंगाई नहीं कहते। यह महंगाई भी उन्हें सताती है, जिनके पास एक्सट्रा सोर्स ऑफ इनकम नहीं है।

सो अगर महंगाई से निपटना है, तो इसका मातम मत मनाइए। बड़े लोगों की लाइफ स्टाइल देखिए कि वे कैसे इसे मैनेज करते हैं। आप धरना-प्रदर्शन की बात करते हैं। जो लोग इसे ऑर्गनाइज करते हैं, उनसे पूछिए कि आज भीड़ जुटाने की लागत कितनी बढ़ चुकी है। पर किसी रैली करने वाले के माथे पर शिकन देखी? सर, आप अपने चिंतन का दायरा बढ़ाइए। इनकम बढ़ाने की सोचिए। कुछ नहीं कर सकते, तो पार्ट टाइम जॉब के लिए अप्लाई करिए, क्योंकि पेट्रोल, गैस और रुपये की मार तो ऐसे ही चलती रहेगी।

उस लड़के ने मेरी आंखें खोल दीं। महंगाई बहुतेरे लोगों के लिए हथियार है, लेकिन आम लोगों को तो इसकी मार सहनी ही है। ऐसे में महंगाई पर रोने के बजाय कुछ और क्यों न किया जाए! सो बीट द हीट ऑफ महंगाई बाई इनकम।

मुरली मनोहर श्रीवास्तव

नई दिल्ली । बुधवार । 2 अप्रैल 2014 अमर उजाला

कविता और कॉल सेंटर

फेसबुक और ब्लॉग के जमाने में ऐसा कोई नहीं बचा, जो अपने राइटर होने का दावा न ठोके। ऐसे में, कई बार कुछ आशुकवियों की अवमानना भी हो जाती है। कई बार ऐसा लगता है कि कविता लिखना किसी गुनाह से कम नहीं। कुछ लोग इसके लिए कवियों की थोक के भाव पैदा होती जमात को जिम्मेदार मानते हैं, तो कुछ लोग कविता के गिरे हुए स्टैंडर्ड को।

ताजा वाकया अपने एक मित्र के साथ हुआ। मंच पर कुछ कविताएं सुनाने के बाद उसे खुद के कवि होने का भ्रम पैदा हो गया। उसने अपनी कविता अखबार के दफ्तर में भेजकर उसके बारे में पूछताछ कर डाली। इस पर जो फटकार उसे मिली कि अब वह कविता लिखने की भूल नहीं करेगा। कविता लिखना कवि के लिए जीने-मरने के समान होता है। ऐसे में कोई उसे एहसास करा दे कि तू कवि नहीं, अपराधी है, तो उसे कितना बुरा लगता होगा।

हालांकि यहां वह इकलौता अपराधी नहीं है। सोशल साइट्स पर, ब्लॉग्स पर, गली-मुहल्ले में ऐसे अपराधी फैले हुए हैं। लेकिन वह बड़ा अपराधी इसलिए है कि उसने कविता लिखकर छपने को भेज दी, फिर संपादक महोदय से पूछने का अपराध भी कर दिया कि वह कब छपेगी। मेरे मित्र को तो गर्वित होना था कि उनकी कविता रिटर्न मेल से लौट नहीं आई। उसे तो साल-छह महीने अखबार के अपराध से लेकर खेल तक के पृष्ठ सब देखने थे। क्या पता, उसकी कविता संपादक के नाम पत्र में छप चुकी हो।

तमाशा

मेरे मित्र के कान में संपादक की डांट गूंज रही है, आपने कविता भेजी, अच्छा किया, बस पेपर देखते रहिए। हम कोई कॉल सेंटर नहीं चलाते कि आप हमें फोन कर उसके बारे में पूछताछ करें।

तब से मेरे मित्र शॉक में हैं। राइटर होने का भूत उन पर से उतर गया है।

मैं उन्हें दिलासा दे रहा हूं कि देखो, राइटर बनना है, तो अपना अपमान कराने की आदत डाल लो। और हां, तुम इमोशनल मुद्दे छोड़ कविता के लिए कॉल सेंटर और पिज्जा डिलीवरी जैसे हॉट टापिक चुनो।

मुरली मनोहर श्रीवास्तव

10 राष्ट्रीय सहारा

नई दिल्ली। मंगलवार • 1 अप्रैल • 2014

चलते-चलते/मुरली मनोहर श्रीवास्तव

वायदे की दुकान से मिक्स मिठाई

एक रिक्शे वाले को सवारी ढोते-ढोते अचानक बुढ़ापे में डामर वाली अच्छी सड़क पर रिक्शा चलाने का अवसर मिले तो समझो जीवन में विकास की अवधारणा पूर्ण हो गयी। किसी इलाके में लकड़ी बीन कर जीवन यापन करने वाले को यदि चुनी हुई लकड़ी बाजार में बेचने की सुविधा मिल जाए तो यह उसके जीवन में सामाजिक विकास की अवधारणा को दर्शाता है। रही किसी मध्यम वर्गीय व्यक्ति के विकास की अवधारणा तो वह एक फ्लैट में रहते हुए दूसरे की बुकिंग व एक बड़ी गाड़ी की ओनरशिप के साथ पूरी होती है। किसी क्रिकेटर से टेस्ट मैच खेलने को कहें तो उसे अपने पर कोफ्त महसूस होती है। चाहे वह कितना ही अच्छा रणजी खिलाड़ी क्यों न हो। और जब उसे आईपीएल का आफर मिलता है तो उसके भीतर स्वतः विकास के लक्षण नजर आने लगते हैं। वैसे ही किसी क्रिकेटर को जब तक सही विज्ञापन न मिले तब तक उसका रन बनाना या चमकना कोई मायने नहीं रखता। किसी सीरियल या फिल्म में जब तक ग्लैमर का तड़का न लगे किसी का विकास नहीं होता। खाली अच्छी ऐक्टिंग की तारीफ बेमानी है।

इसी प्रकार नेता अभिनेता सड़क पर फेरी लगाने वाले- सभी के लिए विकास की अवधारणा अलग-अलग है। कुछ ऐसा ही कांसेप्ट मिठाई का है। कुछ ऐसे हैं, जिनके घर इफरात मिठाई भरी रहती है और उन्हें खाने की इच्छा नहीं होती। कुछ की खाने की इच्छा तो होती है पर डॉक्टर ने परहेज बताया है। यह तो हुई खास की बात पर कामन आदमी के लिए मिठाई का कांसेप्ट बहुत अलग है। वह दो सौ रुपये किलो डालडा के लड्डू से ले कर बारह पंद्रह सौ रुपये किलो मेवे की बर्फी तक आंखो से हर रेट की मिठाई का स्वाद पी लेता है। फिर सोचता है क्या करे! वह मुंह में पानी लिये और इधर-उधर देख कर अंततः कहता है आधा किलो मिक्स तोल दो। इसके बाद वह इतने शान से घर के लिए निकलता है, मानो किला फतह कर लिया हो।

खैर, इस समय पार्टियों की वायदों की दुकान पर एक से एक मिठाईयां सजी हैं। ऐसी-ऐसी लाजवाब कि जिसे देखो, उसे देख कर मुंह में पानी आ जाये। आफत यह कि कोई भी एक मिठाई दिल भरने को काफी नही है। ऐसे में कॉमन मैन लार टपकाते हुए कहता है, भैया सौ ग्राम ईमानदारी, पचास ग्राम विकास, दो सौ ग्राम रोजगार और डेढ़ सौ ग्राम मंहगाई कम करने का वादा तोल दो। पूरी किलो भर वायदे की मिठाई अफोर्ड करने की अपनी ताकत नहीं है। क्या करें कामनमैन के विकास के स्वाद का कांसेप्ट एक लिमिट से ऊपर जाता ही नहीं है।

10 राष्ट्रीय सहारा
नई दिल्ली । शुक्रवार • 14 मार्च • 2014

कटाक्ष

इंपोर्टेड राइटर की वैल्यू

मुरली मनोहर श्रीवास्तव

अपने देश में जो वैल्यू फारेन रिटर्न की है, वह बड़े से बड़े देशी विद्वान की नहीं। भले ही मेड इन इंडिया अमेरिका में खूब चलता हो और इसकी ब्रांड वैल्यू मेड इन चाइना से ज्यादा हो पर हमें अपने प्रोडक्ट पर हमेशा,संदेह रहता है। मैं तो अपने तमाम जानने वालों को यहां तक कहते सुनता हूं कि अपने ही देश से जो सामान एक्सपोर्ट होता है, उसकी क्वालिटी लोकल डिपार्टमेंटल स्टोर में बिकने वाले सामान से कहीं बेहतर होती है। मसलन हल्दीराम की भुजिया जो हमारे लाला जी अपने देश में बेच रहे हैं और जो अमेरिका के किसी इंडियन स्टोर में मिल रही है, वह एक जैसी नहीं है। मैं सोचता हूं, क्या यहां और वहां वाली भुजिया में बेसन का फर्क होगा! कहीं ऐसा न हो कि हमें बेसन की जगह किसी और आइटम की भुजिया मिल रही हो या उन्हें बेसन से भी बेहतर जींस की भुजिया परोसी जा रही हो।

ऐसे ही मैं कुछ नये लोगों के सम्पर्क में आया जो खुद तो अमेरिका नही जा सके पर उनके बच्चों ने उनका सपना साकार करते हुए विदेश की फ्लाइट पकड़ ली। वे उनके द्वारा लाये गए कुछ प्रोडक्ट प्रयोग कर विदेशी सामानों की महिमा बताते नहीं अघाते। उन्हें संदेह रहता है कि जो मोबाइल वे अपने देश में खरीद रहे हैं, वह विदेश से लाये गये सेट से इंफीरियर है, भले ब्रांड वही हो या मेड इन चाइना दोनों पर लिखा हो। वैसे ही शॉपिंग माल से खरीदे गये किसी बड़े ब्रांड पर मेड इन अमेरिका लिख देने भर से वह वहां के ब्रांड की बराबरी नहीं कर सकता।

देखिए, राइटर पर बहस करते समय सामान का उदाहरण नहीं देना चाहिए था। यह सामान्य नैतिकता के विरुद्ध है पर क्या करूं, आजकल चिंतन बड़ा फेसबुकिया हो गया है। भले ही मैं सोशल साइट्स से चिढ़ता हूं। कारण, मुझे लगने लगा है कि आप टेक्नोलॉजी सेवी हों या न हों, उससे बच नहीं सकते। अर्थ यह कि भले आप किसी देशी गंभीर राइटर को न जानते हों पर यह नहीं हो सकता है कि लगातार चिरकुटिया कमेंट करने वाले ब्लॉगर से अपरिचित हों। बाद में भले ही वह विदेशी निकले।

वैसे विदेशी से अर्थ यह न लगा लें कि वह बॉर्न अमेरिकन आस्ट्रेलियन या यूरोपियन होगा। आजकल यलो कार्ड वाला भी खुद को विदेशी कहलाने में गर्वित होता है और अगर कोई स्टडी वीसा लेकर छह महीने भी बाहर रह आया तो खुद को फारेंन रिटर्न ही कहता है। वह अपने विदेश के सौ पचास दिनों के अनुभव सालों-साल बताता रहता है, भले ही उसे अपने शहर की गली मोहल्ले में बिताये अपने पचीस साल के दो दिन भी याद न हों। और हम हैं कि उसे बड़ी हसरत से देखते हैं कि यार अगले का जीवन धन्य हो गया जो विदेश देख आया। एक हम हैं कि आज तक देश के समंदर भी नहीं देख पाये।

देखिए, इतना लिखने का मतलब सिर्फ अपनी सोच की तह तक पहुंचने का प्रयास था क्योंकि अब हम उस मोड़ पर आ गये हैं, जहां राइटर पर बहस कर सकें। इस देश में जब कोई राइटर विदेश से बेस्ट सेलर बन कर लौटता है तो वह हाथों-हाथ छा जाता है जबकि अपने देश में बीस पचीस सालों से हिन्दी अखबारों में कलम घिस्सू राइटर बस पब्लिशर के चक्कर भर काटता रह जाता है। यह स्थिति बताती है कि देखो, अखबार में छपने और अपनी किताब को बेच कर बेस्ट सेलर बनने में बहुत फर्क है। वह कहता है, आप देख लीजिए, उसका कंटेंट और हमारे लेखन की गहराई में कितना फर्क है और प्रकाशक बताता है कि कंटेंट उतना इंपोर्टेंट नहीं होता, जितना किसी किताब के बिकने के लिए उसका कंट्रोवर्शियल होना या राइटर का पॉपुलर होना। वह कहता है, हमारे देश में किताबें खरीदता कौन है! लोग ढाई सौ रुपये की मूवी देख लेते हैं पर पचास रुपये की किताब खरीदने में उन्हें कष्ट होता है। यह कहता है कि यह तुम्हारी प्राब्लम है। देखो, अंग्रेजी से अनुवाद की हुई किताबें कितनी बिकती हैं! वह सर पकड़ लेता है।

बिकने और अच्छे होने में फर्क है। हम अच्छे होकर भी नहीं बिकते, ठीक आर्ट फिल्म की तरह। जबकि बिना सिर पैर की कमर्शियल फिल्मों का कलेक्शन देख लीजिए। दोस्त, बाजार अच्छे होने से नही, बिकने से चलता है और जब तक बिकने का जुगाड़ नहीं कर सकते, कितना भी अच्छा लिखो, उसका कोई मतलब नहीं है। जब खरीदार ही नहीं हैं तो बड़ी-बड़ी बातों का मतलब क्या है! खैर बहस जारी है कि क्या देसी राइटर्स को भी हिन्दी फिल्मों की तरह विदेशी मैनिरज्म की कॉपी शुरू कर देनी चाहिए या ओरिजिनल वर्सन और नीतियों पर कायम रहते हुए आशावादी सोच के साथ अच्छे दिनों की उम्मीद पाले रखनी चाहिए।

अमर उजाला

नई दिल्ली | सोमवार | 3 मार्च 2014

भाई, तू डिमांड में है

नुक्कड़

कहते हैं कि कभी घूरे के दिन भी फिरते हैं। सो कोई आश्चर्य नहीं कि आजकल हमारे दिन बहुर रहे हैं। सत्तर के दशक की सड़क छाप पैंट-शर्ट, जो हीरो के हिट होने की गारंटी थी, 21वीं सदी में फिर डिमांड में है। पुराने जमाने का हीरो जब सड़क से उठकर बंगला खड़ा करता और मां-बाप पर अत्याचार करने वालों से चुन-चुनकर बदला लेता, तब हॉल में बैठी पब्लिक इमोशनल होकर ताली बजाने लगती थी। उस जमाने में हीरो के घुटने पर फटी जींस फैशन आइकॉन बन गई थी। आज वही ट्रेंड लौट आया है।

आज जिसे भी आगे बढ़ने की जरूरत नजर आती है, वह अपनी कीमती घड़ी, महंगी ड्रेस और ब्रांडेड जूता उतार कर जनपथ पर सस्ती पैंट-शर्ट और मफलर ढूंढता नजर आता है। फुटपाथ पर सोने वाला, सड़क किनारे रेहड़ी लगाने वाला और गोलगप्पे बेचने वाला आज डिमांड में है। ऑफिस के बाबू-सा दिखने की हसरत आज हर बड़ा आदमी पाल रहा है। किसी जमाने में सिक्यूरिटी लेकर चलना आन-बान और शान की निशानी था, आज यह पर्सनेलिटी पर बोझ नजर आता है। पहले बिना जान-पहचान और जुगाड़ के बड़े आदमी से मिल ही नहीं सकते थे। अब बड़े लोग व्यस्तता का चोला उतार खुद भीड़ से घुलने-मिलने को बेताब नजर आते हैं। मैनेजमेंट वालों के कांसेप्ट बदल रहे हैं और वे महानता बनाम साधारणता का चैप्टर खास तौर से सिलेबस में जोड़ रहे हैं। *लगान* और *चक दे* के साथ जंतर-मंतर आंदोलन की सफलता की कहानी भी मैनेजमेंट स्टूडेंट्स को दिखाई जाने लगी है।

अब मैं गली-मुहल्ले-नुक्कड़ पर ठलुआ खड़े लोगों से कहना चाहता हूं कि अपनी इनर्जी और विचारों की दौलत यों ही जाया मत करो। तुम डिमांड में हो। तुम्हें क्या पता कि तुम्हारे रहन-सहन और चाल-ढाल की क्लिपिंग यू-ट्यूब पर किस कदर हिट हो रही है। बड़े लोगों के चमचे तुम्हारे कपड़ों का नमूना लेकर चांदनी चौक की गलियों की खाक छान रहे हैं। कई तो कांटा-चम्मच छोड़कर यह सीख रहे हैं कि हाथ में दोना लेकर कैसे खाते हैं। कई उस सीन की नकल कर रहे हैं, जिसमें एक भूखा आदमी बिना पानी का घूंट पिए मिनटों में पूड़ी-सब्जी निगल जाता है। मुझे वह सीन बड़ा मारक लगता है, जिसमें कोई अनुभवहीन प्राणी इसे कॉपी करने के चक्कर में कौर गले में फंसाकर खांसने लगता है और उसकी लाल-लाल आंखें बाहर निकल आती हैं।

कुछ भी हो, आज सिंपल दिखना डिमांड में है।

मुरली मनोहर श्रीवास्तव

10 राष्ट्रीय सहारा

नई दिल्ली। मंगलवार • 18 फरवरी • 2014

चलते-चलते/मुरली मनोहर श्रीवास्तव

सपनों की प्रयोगशाला

मैंने सपने देखने शुरू कर दिये हैं। सुना है, हमारी समस्याओं के समाधान सपनों की प्रयोगशाला में तैयार हो रहे हैं। रोज टीवी पर घंटो बहस देखता हूं और अच्छी नींद आ जाती है। लगता है, इतने बड़े बौद्धिक चिंतन और जागरूक लोकतांत्रिक देश में जन-तंत्र कब तक घर के बाहर दस्तक देता रहेगा। एक बहस में मुझे भी हिस्सा लेने का मौका मिला। बहस थी 'खबर' पर। मेरे भीतर खबर को लेकर रूमानियत का अहसास जगने लगा। जैसे कोई शेर कह रहा हो कि *कल चौदहवी की रात थी, शब भर रहा चर्चा तेरा, कुछ ने कहा ये चांद है, कुछ ने कहा चेहरा तेरा। हम चुप रहे। हम हंस दिये मंजूर था परदा तेरा।*

मीडिया में चल रही तंत्र के ऊपर जन के हावी होने की खबर अर्थात गांधी के सपने के हकीकत में बदल जाने की कल्पना रूमानियत नही तो और क्या है! ऐसे में चुप रह कर हंसना और पर्दे के बने रहने देने में ही मुझे समझदारी नजर आती है। खैर खबर कुछ और होती है। मैंने भ्रम तोड़ने के लिए एक शेर कहा- *बहस में हमने इंसान के दुःख दर्द का हल ढूढ़ लिया, क्या बुरा है जो ये अफवाह उड़ा दी जाये।* अर्थात मेरे दोस्त इंसान के दुःख दर्द का हल को ढूंढ लेने की बात अफवाह तो हो सकती है, पर खबर नहीं। अब अगर मैं लिखूं कि हम सब बड़े और महत्वाकांक्षी लोगों की सपनों की प्रयोगशाला के कच्चे माल (अर्थात सामान) की तरह हैं तो गलत क्या है? वह जो तंत्र है, प्रयोगशाला का उपकरण है और हमारे इमोशंस, भावनाएं सपनों की प्रयोगशाला के केमिकल। इस देश की सपनों की प्रयोगशाला में जाने कितने प्रयोग हमारे ऊपर होते हैं और इसके लिए कभी किसी इमोशन का केमिकल प्रयोग होता है, कभी किसी इमोशन का और हम हर बार नया प्रोडक्ट बन कर सामने आते हैं। लोकतंत्र में हम जन नहीं, प्रोडक्ट बन चुके हैं, जो नहीं बनें हैं, वे ढाले जा रहे हैं। लोकतांत्रिक सपनों की प्रयोगशाला में हम आशावादी बनें या निराशावादी, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता क्योंकि वक्त बीतने के साथ उम्र हमें अपनी सोच के निरर्थक साबित होने का प्रमाण दे देती है। कारण, प्रोडक्ट की सोच का कोई अर्थ नहीं होता। प्रोडक्ट बस बिकने के लिए होता है। प्रयोगशाला में बने किसी हिट प्रोडक्ट के फार्मूले से जन को प्रोडक्ट बना उसे सड़क पर बेच देने का हुनर महानता की गारंटी है और जब तक हमें अहसास होता है कि हम किस तरह का प्रोडक्ट बन कर बिके हैं, सौदागर ज्ञान बांटने लगता है। सपनों की प्रयोगशाला में तैयार प्रोडक्ट आम जिंदगी के हल नही निकालते और वे जो सपनों की प्रयोगशाला से उम्मीद पाले बैठे रहते हैं, फिर निराश हो किसी चमत्कार की आस में डूब जाते हैं। तभी तो गालिब ने लिखा है- *खुदा के वास्ते पर्दा नकाबे से उठा जालिम, कहीं ऐसा न हो यह भी वही काफिर सनम निकले।*

राष्ट्रीय सहारा
सच कहने की हिम्मत
वर्ष-23, अंक 8177

अमर उजाला

नई दिल्ली | बुधवार | 22 जनवरी 2014

किस-किसका विकल्प ढूंढेंगे

तमाशा

कल पेट्रोल पंप पर पहुंचा, तो देखा, मेहरा जी डीलर से झगड़ रहे हैं, अच्छी लूट मचा रखी है तुमने। कल उन्यासी छब्बीस था, आज उन्यासी छिहत्तर कैसे हो गया?

डीलर कह रहा है, पेट्रोल के रेट हमारे हाथ में नहीं हैं। कंपनी जो बताती है, उसी पर बेचना है।

लेकिन आज अचानक रेट पचास पैसे बढ़ कैसे गए?

सर, पचास पैसे का सिक्का मिलता कहां है? ऐसे में लीटर में पचास पैसे बढ़ भी गए, तो क्या फर्क पड़ता है!

मेहरा जी बोले, बात पचास पैसे की नहीं, लूट की है। एक तो तुम्हारा मीटर हर लीटर में पचास ग्राम पेट्रोल पी लेता है, बाकी बीस-पच्चीस ग्राम मिलावट के नाम जाता है। सौ-दो सौ ग्राम पेट्रोल तो जाम को समर्पित है। मुझे तो एक लीटर में सात सौ ग्राम पेट्रोल ही मिलता है। आज तो मुझसे कल वाला ही रेट ले लो।

वह बोला, आपसे कम लूंगा, तो पीछे पचास लोग खड़े हैं। कंपनी वालों को पता चलेगा, तो लाइसेंस कैंसिल हो जाएगा। आगे आपकी मर्जी, पेट्रोल लो, न लो।

मेहरा जी बोले, पेट्रोल तो मैं ले चुका हूं।

तो कुछ नहीं हो सकता। पेमेंट तो नए रेट पर ही करनी पड़ेगी।

मेहरा जी बोले, तुम टंकी से एक रुपये का पेट्रोल निकाल लो।

सुबह-सुबह स्कूटर की टंकी से पेट्रोल कैसे निकलेगा? एक रुपये का पेट्रोल मैं नापूंगा कैसे? निकाल भी लिया, तो उसे रखूंगा कहां?

यार, नाराज क्यों होते हो। मैं तो कल के रेट से घर के सारे छुट्टे इकट्ठा कर दो लीटर पेट्रोल लेने आया था। लेने के बाद देखा, तो एक रुपया कम पड़ गया। तब पता लगा कि रेट बढ़ा है। पेट्रोल तुम निकाल नहीं सकते, रेट कम करोगे नहीं और एक रुपया मेरे पास है नहीं। मैं क्या करूं?

पेट्रोल पंप वाला बोला, एक रुपये फिर कभी दे दीजिएगा।

मेहरा जी बोले, हमारी भी कोई इज्जत है। ऐसा नहीं होगा।

मुझसे रहा नहीं गया। मुस्कराते हुए मैंने कहा, मेहरा जी, आप यह सोच लो कि एक सौ अट्ठावन की खरीद पर एक रुपये का पेट्रोल मुफ्त मिला आपको, सब्जी की खरीद में मिर्च की तरह।

मेहरा जी स्कूटर स्टार्ट करते हुए बोले, थैंक्यू दोस्त, पर लगता है कि पेट्रोल का विकल्प ढूंढना पड़ेगा।

मैं कहना चाहता था कि मेहरा जी, अनाज, चीनी, सब्जी-आप किस-किसका विकल्प ढूंढोगे?

मुरली मनोहर श्रीवास्तव

अमर उजाला

नई दिल्ली | मंगलवार | 12 नवंबर 2013

पर उपदेश कुशल बहुतेरे

नुक्कड़

इस देश में सबसे आसान काम है, उपदेश देना। मैंने जबसे होश संभाला है, बस उपदेश ही सुन रहा हूं। बचपन में घरवालों के उपदेश सुनता रहा। फिर टीचर और प्रिंसिपल के उपदेशों से पाला पड़ा। कुछ बड़ा हुआ, तो पिताजी के साथ प्रवचन सुनने जाना पड़ता था। फिर नौकरी में आया, तो बॉस से उपदेश सुनने की आदत सी पड़ गई है। अब बच्चे उपदेश देते हैं। हाईटेक जमाने में मैं खुद को बहुत पिछड़ा हुआ पाता हूं। इस उपदेश के कारोबार में न जाने मुझे हर उपदेश देने वाले पर संशय बना रहा। एक गांधी जी के अलावा मुझे कोई ऐसा नजर नहीं आया जिसने उपदेश देने से पहले उसे अपने ऊपर लागू किया हो।

मेरा मानना है कि उपदेश जैसी चीज बस देने के लिए ही होती है। सच बोलो, धैर्य रखो, *संतोषम परम् सुखम्*, सादा जीवन उच्च विचार, पेट्रोल बचाओ, सोने का मोह छोड़ो, नैतिक बनो, भौतिकता में कुछ नहीं रखा है, जैसे वचन कहन-सुनने में अति उत्तम हैं। ईमानदार बनो, देशभक्त बनो, चोरी मत करो जैसे वाक्य किसी उच्च आसन पर बैठकर प्रभावशाली मुद्रा में कहने से सुनने वालों पर सम्मोहक प्रभाव पड़ता है। ऐसे में सुनने वाले को लगता है कि कहने वाला जरूर पहुंचा हुआ संत आदमी है।

यह देश सच पूछिये, तो उपदेशकों के बल पर ही टिका हुआ है। हमारे देश की आबादी बड़ी उत्सव प्रेमी है। हम अपने जीवन में तनाव बर्दाश्त ही नहीं कर सकते। उपदेश इस देश में सबसे सस्ता सुंदर और टिकाऊ उत्सव प्रदान करता है। यहां आने और सुनने का टिकट नहीं लगता, बल्कि उपदेश सुनने वालों के लिए जलपान का प्रबंध होता है। यदि कार्यक्रम पूरे दिन का हुआ, तो दोपहर के भोजन की भी व्यवस्था होती है। जहां उत्सव होगा, वहां बाजार पनपते देर नहीं लगती और बाजार पनपते ही व्यापार चल पड़ता है। सो उपदेश बड़े काम की चीज है यहां। उपदेश देने वाला भीड़ से आनंदित है और भीड़ उपदेश की आदर्श बातों से। आनंद का प्रवाह उपदेश देने और लेने में प्रवाहित हो रहा है। ऐसे में उपदेश को आचरण में लाने की फिक्र न उपदेशक को है और न ही साधक को। रही भीड़ तंत्र की बात, तो वह अपने आप जहां एकत्र होती है, ताकत बन जाती है। भीड़ लगते ही मीडिया और नेता पहुंच जाते हैं। इसलिए लोकतंत्र में ताकत भीड़ की है और पर उपदेश भीड़ जुटाने का सर्वाधिक सुलभ साधन। सो भैया इस देश में पर उपदेश कुशल बहुतेरे का कारोबार चकाचक लाभ का काम है।

मुरली मनोहर श्रीवास्तव

कटाक्ष

दुखी रहने का नैतिक अधिकार

मुरली मनोहर श्रीवास्तव

विश्वास मानिए, हमे अपने देश मे दुखी रहने का नैतिक अधिकार मिला हुआ है। अब आपको क्या बताएं कि यहां लोग किस-किस तरह से और कितने दुखी हैं। कोई अपनों से दुखी है तो कोई परायों से। कुछ दूसरों के कारण दुखी हैं तो कुछ अपने ही कारण। कुछ सब कुछ पाकर दुखी हैं तो कुछ सब कुछ खोकर। कुछ इसलिए कि कुछ नहीं मिला और कुछ इसलिए कि जो चाहते थे, वह नहीं मिला। इतना ही नही, जिसे वह मिला जो न मिलने वाले की शिकायत है। वह भी दुखी है कि उसे वह चाहिये ही नहीं था जो मिल गया है।

सीधा सा अर्थ यह है कि मिलने वाले की अपनी शिकायत है और जिसे नहीं मिला, उसकी तो बात ही क्या? मिर्जा गालिब तो यहां तक लिख गये कि *कैदे हयात और बन्दे गम अस्ल में दोनों एक हैं/मौत से पहले आदमी गम से निजात पाये क्यों।* अर्थ यह कि जिन्दगी की कैद और आदमी का गम असल में एक ही बात है और इस तरह मौत से पहले किसी आदमी को गम से मुक्ति मिल ही नहीं सकती। इतने बड़े शायर को चुनौती नही दी जा सकती अतः इसका अर्थ यह हुआ कि जीवन का स्थायी भाव है दर्द।

आप शब्दों के हेर-फेर से कन्फ्यूज मत होइएगा क्योंकि दुख-दर्द एक साथ प्रयोग होता है। अब दुख और दर्द को अलग करके या साथ रखकर आप अपनी सुविधा के अनुसार अर्थ निकालते रहिए। जन्म से लेकर मृत्यु तक जीवन में दर्द ही दर्द है, सो हमें दुखी रहने का नैतिक अधिकार विरासत में मिला हुआ है। एक और बेहतरीन शेर है- *हमने इन्सान के दुख दर्द का हल ढूंढ लिया/क्या बुरा है जो ये अफवाह उड़ा दी जाए।*

सच मानिए, दुखी रहने के इसी नैतिक अधिकार पर न जाने कितने कारोबार टिके हुए हैं। नतीजा यह कि कभी कोई तो कभी कोई हमारे दुख-दर्द दूर करने का दावा करता है। कभी सिनेमा की दुनिया में हमारे दुख-दर्द दूर होते हैं तो कभी मन्दिर और कभी गीत-संगीत की महफिल में। न जाने कितने ठिकाने बने हुए हैं दुख दर्द मिटाने के। हम भी अपनी सुविधा के अनुसार दुख-दर्द मिटाने के बहाने और ठिकाने ढूढ़ते रहते हैं।

हर गली-चौराहे पर हमारे ही दुखों की मार्केटिंग करते लोग नजर आ जाएंगे। ऐसी ही अनोखी दुनिया में कुछ अजीब से लोग भी मिलते हैं जो कहते हैं कि दर्द का हद से गुजरना है दवा बन जाना। वे कहते हैं कि *दर्द से मेरा दामन भर दे या मौला या मुझको दीवाना कर दे या मौला।* अर्थात अब हमने दर्द में ही आनंद उठाने का खेल खेलना शुरू कर दिया है, इसलिए अब मुझे दर्द की सौगात देते रहो।

इसके कई फेस हैं। हम अपने किसी दर्द की दूसरे दर्द से तुलना कर के कम्पेरिजन जोन में जाकर दर्द का लुत्फ उठाने लगते हैं या फिर दूसरों के दर्द से अपने दर्द की तुलना कर हलके हो लेते हैं। इसमें कोई शक नहीं कि दुखी रहने का नैतिक अधिकार हमें मिला है, कभी रोटी के निवाले के लिए तो कभी मिली हुई रोटी के चुपड़ी (घी लगी न होने पर) न होने पर। कभी सड़क पर पैदल घिसट-घिसट कर जिन्दगी काटने पर तो कभी साइकिल है तो स्कूटर के न होने पर। कार है तो उसके खटारा होने पर। घर-मकान नहीं है तो आसमान के नीचे रहने पर और है तो उसके छोटे होने पर।

इस तरह इस जमाने में न जाने कितने कारण हैं जो हमें दुखी रहने का नैतिक अधिकार प्रदान किये हुए हैं। इसके आगे एक शेर है जो कहता है- *बेहतर तो है जहान में न दुनिया से दिल लगे, पर क्या करें जो काम न दिल लगे चले।* सो इस दुखी रहने के नैतिक अधिकार में ही जीने के सारे साधन मौजूद हैं और हम इन दुखों को सीने में दबा कर हर समय उत्सव प्रेमी बने रहते हैं।

हम कभी जन्मोत्सव मनाते हैं तो कभी किसी सफलता पर खुश हो लेते हैं। कभी किसी त्योहार की बधाई बांटते हैं तो कभी अपनी किसी उपलब्धि का जश्न मनाते हैं।

यह सच है कि दुखी रहने के हमारे नैतिक अधिकार हमसे कोई छीन नहीं सकता पर दुख के स्थायी भाव पर कठिन परिस्थितियों में जीने की इन्सानी जिजीविषा ही तो हर हाल में हमें जिन्दा रखती है और इसीलिए शब्द कोश में हंसी और प्रसन्नता जैसे शब्द भी विद्यमान हैं।

अमर उजाला
नई दिल्ली | बुधवार | 25 सितंबर 2013

गुरु गूगल दोऊ खड़े

तमाशा

आज के जमाने में गुरु का हाल देखकर दिल दहल उठता है। तुलसीदास ने लिखा है, *मातु पिता अरू गुरु की बानी बिनहि विचार करिय शुभ जानी।* पर लगता है, इस चौपाई से गुरु को बाहर निकालने का समय आ गया है। आज गुरु अपनी गुरुता खो चुके हैं। फिर आज गुरु के भी न जाने कितने विकल्प आ गए हैं। गूगल को ही देख लीजिए।

आज आदमी गुरु के पास क्यों जाए? सवाल यह भी कि पहले आदमी गुरु के पास क्यों जाता था। पहले के युग में आगे बढ़ने का रास्ता गुरु ही दिखाता था। लेकिन जैसे-जैसे जीवन में शिक्षा कमाई के उद्देश्य से जुड़ती चली गई, वैसे-वैसे गुरु-शिष्य परंपरा क्षीण होती चली गई। जो गुरु जितना बड़ा पैसे बनाने का खेल सिखा सके, वह उतना ही सफल बन गया। यह गुरु खेल के क्षेत्र का हो सकता है, अध्यात्म, मेडिकल या इंजीनियरिंग के क्षेत्र का भी। गुरु को जब व्यवसाय ही करना है, तो काहे का संकोच और काहे का मान-सम्मान। आज गुरु दक्षिणा भी एकलव्य के अंगूठे से आगे बढ़ चुकी है। कौन-सा गुरु अपने दिए हुए ज्ञान और आशीर्वाद के बदले क्या मांग ले, नहीं कह सकते। आज गुरु शिष्या से फेसबुक आईडी से लेकर मोबाइल नंबर तक मांगते नजर आते हैं। ऐसे ही शिष्य भी गुरु के चरण स्पर्श जैसी फार्मेलटी से कोसों दूर हैं। मैंने तुम्हें फीस दी, तुमने बदले में पढ़ाया, ऐसे में कैसा एहसान और कैसा मान-सम्मान! यह तो सीधे-सीधे गिव एंड टेक का मामला है।

दूसरी बात यह कि जो काम कभी गुरु करता था, आज वह काम गूगल उससे बेहतर कर रहा है। आज गुरु नहीं, गूगल ज्ञान की खान है। जिन सवालों के जवाब बड़े-बड़े प्रोफेसरों के पास नहीं हैं, उनके जवाब गूगल में उपलब्ध हैं। वह भी बिना गुरु दक्षिणा के। गूगल किसी को नखरे नहीं दिखाता और अपने हर विद्यार्थी को सम भाव से देखता है। उसके पास अर्जुन और एकलव्य वाला भेदभाव नहीं है। आज के कबीर के शब्दों में कहें, तो *सात समंद की मसि करौं, लेखनी सब बनराई, धरती सब कागद करौं, गूगल गुन लिखा न जाय।* आज यदि गूगल और गुरु खड़े रहें, तो छात्र गूगल के आगे ही नतमस्तक होगा।

नोट- इसे पढ़ने के बाद गुरु प्रकृति के लोग हतोत्साहित न हों, क्योंकि आज भी करोड़ों लोग ऐसे हैं, जो परिश्रम छोड़ चमत्कार की आस में गुरु की शरण में जाते हैं। ऐसे देश में गुरुओं का धंधा चलते रहने में कोई संदेह नहीं है।

मुरली मनोहर श्रीवास्तव

अमर उजाला
नई दिल्ली | बुधवार | 4 सितंबर 2013

प्याज, सोना और रुपया

तमाशा

विशेषज्ञ बता रहे हैं कि प्याज में तेजी आवक घटने के कारण नहीं, आपूर्ति अनियमित होने के कारण आई है। अब खरबूजा चाकू पर गिरे या चाकू खरबूजे पर, कटेगा तो खरबूजा ही। ऐसे ही किसी दर्द भरे लम्हे में मैंने एक खूबसूरत प्याज को निहारते हुए कहा, तू आम आदमी को क्यों रुला रहा है? लोग कहते थे, अपन तो नमक-प्याज से रोटी खाने वाले आदमी हैं। आज बड़े-बड़े होटल वाले सलाद में प्याज गायब कर रहे हैं। तू आम आदमी के निवाले से दूर हो गया है और तुझे भी राशन कार्ड पर खरीदने की नौबत आ गई है। मुझे बस इतना बता दे कि किसान तेरी फसल के सहारे अपने कर्ज से तो मुक्त हो गए हैं न।

इठलाता हुआ प्याज बोल पड़ा, क्या बताएं! मेरा बस चले, तो मैं मंडी में ही न उतरूं। पर क्या करूं? इस देश में न किसान के चाहने से कुछ होता है, न उपभोक्ता के। जहां से मैं चलता हूं, वहां के लोगों को भी मैं राजा नहीं बना पाता, और जहां पहुंचता हूं, वहां भी कम रेट में आम लोगों की थाली में नहीं पहुंच पाता।

लेकिन इससे पहले कि मैं और इमोशनल होता, सोना बीच में कूद पड़ा। देखिए, आप प्याज से प्यार जता रहे हैं और मुझे भूल रहे हैं। मैंने उसे कम्युनिस्ट नजरिये से देखते हुए कहा, सुन स्वार्थी, तू ही असली गुनाहगार है देश की अर्थव्यवस्था को ध्वस्त करने का। अगर तू इतना न उछलता, तो देश की हालत इतनी पतली न होती। तू खुद तो चमक रहा है, पर लोगों के चेहरे की चमक उड़ा रहा है। सोना बोला, इसमें मेरी क्या गलती है। जरा रुपये की हालत देखो। जब-जब वह गिरता है, मुझे उठना पड़ता है। तुम क्या जानो कि मुझ पर कितना दबाव है। जिसे देखो, वही मुझे दबाए बैठा है।

अचानक मुझे रुपये पर बेहद गुस्सा आया। मैंने पूछा, क्यों भाई, तुम क्यों इतनी तेजी से नीचे जा रहे हो? वह रुआंसा होकर बोला, मैं कितने महीनों से सारा दबाव खुद पर झेलकर चुपचाप सहता रहता हूं। जब निर्यात न होने के बावजूद दनादन आयात करोगे, तो मेरी हालत तो पतली होनी ही है। डॉलर मेरे साथ मिलकर रहते हैं, तो मेरी भी मौज रहती है। पर डॉलर अंकल के निकल जाने के बाद मुझे पूछता कौन है!

रुपये की बात भी ठीक है। पर यह क्या कि जिसे देखो, वही अपना दुखड़ा सुनाए जा रहा है। मुझे समझते देर न लगी कि इस चक्रव्यूह में मैं चकरघिन्नी की तरह फंसा रह जाऊंगा। सो इन सबको छोड़ मैं अपने रास्ते निकल पड़ा।

मुरली मनोहर श्रीवास्तव

यूएसए टुडे

अमर उजाला

नई दिल्ली | सोमवार | 10 दिसंबर 2012

हम ओलंपिक नहीं, कुछ और खेलते हैं

तमाशा

लो, अब ओलंपिक से भी हमारा पत्ता कट गया। इस साल देश को सबसे ज्यादा पदक मिले और इसी साल यह हाल हो गया। भला यह भी कोई बात हुई? पर क्या करें, इसमें हमारा तो कोई दोष नहीं। दरअसल ओलंपिक वाले ही नासमझ हैं। उन्हें क्या पता कि हमारे देश में कौन-कौन से खेल खेले जाते हैं। वैसे भी जिस देश का क्रिकेट कप्तान मैच से पहले टर्निंग ट्रैक की मांग करता है, उस देश के खेल को दुनिया समझ भी कैसे सकती है! पर दुख यह है कि ओलंपिक वाले असली खेल समझना ही नहीं चाहते। वे तो यह भी नहीं जानते कि खेल में सबसे महत्वपूर्ण चीज क्या होती है। जो लोग मेडल को ही खेल की उपलब्धि मान लेते हैं, वे असल में बड़े ही नादान किस्म के लोग हैं।

दरअसल खेल शुरू होता है चुनाव, बयान, लॉबिंग और पार्टी से। खेल का असली मकसद तो कमाई और टूरिज्म है। भला वह भी कोई खेल है, जिसमें लाखों-करोड़ों के वारे-न्यारे न हों? खेल में खेल भावना का क्या काम! जिस खेल में अपनी मरजी के खिलाड़ी न चुने जा सकें, जिस खेल में मनमाफिक पिच न हो, वह भी कोई खेल है। भाई साहब, खिलाड़ी तो वही है, जो जिला स्तर से जुगाड़ एक्सपर्ट हो। हमारा राष्ट्रीय खेल तू-तू-मैं-मैं ओलंपिक में है ही नहीं। न ही ओलंपिक में बयान-बयान खेला जाता है। वहां फिक्सिंग-फिक्सिंग भी नहीं चलता। खाली रेस्लिंग, हॉकी, वेट लिफ्टिंग या ट्रैक ऐंड फील्ड प्रतियोगिताओं से क्या होगा? जरा यह तो देखिए कि इस देश में हैं ही कितने, जो खेलना- कूदना पसंद करते हैं। हां, मां-बाप के लाख मना कराने के बाद भी कुछ नालायक बच्चे खिलाड़ी बन ही जाते हैं, और न चाहते हुए भी मेडल ले आते हैं। वे जब सीधे सिखाने से नहीं मानते, तब उन्हें सही राह दिखाने के लिए ही ऐसे कदम सोच-समझ कर उठाए जाते हैं। अब मां- बाप को बड़ा आराम हो गया है। वे अब मजे से बच्चों को पढ़ने के लिए यह कहकर डांट सकते हैं, कि क्या करेगा खेल-कूदकर, कौन-सा ओलंपिक में जाना है! खेलना है, तो जा पॉलिटिक्स-पॉलिटिक्स खेल, जिसमें कुछ भला है। जा फिक्सिंग सीखकर आ, जिससे आईपीएल खेल सके। जा बेटा, थोड़ा फेंकना सीख, जिससे दो रोटी कमाने का जुगाड़ बन सके।

मेरे दोस्त, इस देश के असली खेल कुछ और हैं, जो बड़े लोग खेलते हैं। ओलंपिक-वोलंपिक इस देश के लायक नहीं है। हाथ आजमाना है, तो असली खेल में आजमाओ।

मुरली मनोहर श्रीवास्तव

अमर उजाला

इलाहाबाद | बृहस्पतिवार | 7 जून 2012

महंगाई कहां, यह तो विकास की कीमत है

तमाशा

मैं पिछले दिनों ऑफिस में पेट्रोल के दाम बढ़ने पर मातम मना रहा था कि देखा, एक नया लड़का गाड़ी खरीदने के लिए लोन के जुगाड़ में लगा है। मैंने उससे कहा, दोस्त, आज तो कम से कम मौन व्रत रख लो पेट्रोल के दाम बढ़ने के विरोध में। उसने मेरी तरफ देखा और मुंह बिचका कर बोला, अंकल, आपकी सोच पुरानी हो गई है। पेट्रोल महंगा नहीं हुआ है। मुझे झटका लगा। अरे भाई, पूरे देश में पेट्रोल बम को लेकर हाहाकार मचा है। और तुम कह रहे हो पेट्रोल के दाम ही नहीं बढ़े। कुछ खबर भी है कि इसके बाद महंगाई कितनी ऊपर जाएगी?

वह हंसा, अंकल, महंगाई-वहंगाई कुछ नहीं होती। यह सब मन का वहम है।

मुझे लगा कि हो न हो, यह आईपीएल या राजनीति के कारोबार से जुड़ा है। तभी इसे दाल-रोटी का भाव नहीं पता। मैंने कहा, जब घर-गृहस्थी के चक्कर में पड़ोगे, तब पता चलेगा।

उसने कहा, अंकल, पेट्रोल के दाम रोज बढ़ते हैं, तो क्या गाड़ियों की सेल कम हुई? या फिर एसी, मोबाइल, फ्रिज की रोज नई शॉप खुलने के बाद भी मार्केट में भीड़ रुकी? सर, देश तरक्की कर रहा है। लोगों की पर्चेजिंग पावर बढ़ रही है। पैदल वाला बाइक पर आ गया है। साइकिल वाले ने नैनो ले ली है। शॉपिंग मॉल में पैर रखने की जगह नहीं है। देश 4 जी की तरफ जा रहा है। और आप हैं कि बैलगाड़ी का चिंतन कर रहे हैं!

सर, विकास की कीमत होती है, इसे महंगाई नहीं कहते। यह महंगाई भी उन्हें सताती है, जिनके पास एक्सट्रा सोर्स ऑफ इनकम नहीं है।

सो अगर महंगाई से निपटना है, तो इसका मातम मत मनाइए। बड़े लोगों की लाइफ स्टाइल देखिए कि वे कैसे इसे मैनेज करते हैं। आप धरना-प्रदर्शन की बात करते हैं। जो लोग इसे ऑर्गनाइज करते हैं, उनसे पूछिए कि आज भीड़ जुटाने की लागत कितनी बढ़ चुकी है। पर किसी रैली करने वाले के माथे पर शिकन देखी? सर, आप अपने चिंतन का दायरा बढ़ाइए। इनकम बढ़ाने की सोचिए। कुछ नहीं कर सकते, तो पार्ट टाइम जॉब के लिए अप्लाई करिए, क्योंकि पेट्रोल, गैस और रुपये की मार तो ऐसे ही चलती रहेगी।

उस लड़के ने मेरी आंखें खोल दीं। महंगाई बहुतेरे लोगों के लिए हथियार है, लेकिन आम लोगों को तो इसकी मार सहनी ही है। ऐसे में महंगाई पर रोने के बजाय कुछ और क्यों न किया जाए! सो बीट द हीट ऑफ महंगाई बाई इनकम।

मुरली मनोहर श्रीवास्तव